महाकविशम्भुविरचितः—

राजेन्द्रकर्णपूरः

(हिन्दीभाषानुवाद तथा काव्यमर्मबोधिनी टिप्पणियों से संवलित)

टीका तथा सम्पादन—

डा० वेदकुमारी, एम० ए० (संस्कृत, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति) पीएच० डी० (संस्कृत)

प्रोफेसर तथा अध्यक्षा, संस्कृत विभाग

जम्मू विश्वविद्यालय

डा० रामप्रताप, वेदालङ्कार, एम० ए०, साहित्याचार्य

पीएच० डी०, प्रवक्ता संस्कृत विभाग

जम्मू विश्वविद्यालय

प्रकाशक—
रामप्रताप, वेदालङ्कार
१७३, रघुनाथपुरा,
जम्मू तवी

वितरक—
भारतीय विद्या प्रकाशन
पो० बा० १०८, कचौड़ी गली
वाराणसी—१ (भारत)

C सम्पादक

प्रथम संस्करण १९७३
मूल्य ५ रुपये

मुद्रक—
स्पेसएज प्रिण्टर्ज़, म्युन्सिपल मार्केट,
महेशी गेट, जम्मू तवी

RAJENDRAKARNAPURA

of the great poet SHAMBHU

(With Hindi Translation and commentary)

Dr. Ved Kumari, M. A., Ph. D.
Professor & Head of the Department
of Sanskrit, Jammu University

Dr. Ram Pratap, Vedalankar, M. A., Ph. D.
Sahityacharya, The Department of Sanskrit,
Jammu University,

Publisher :

Ram Pratap
Vedalankar
173, Raghunath Pura
Jammu (Tawi)

Distributors :

Bharatiya Vidya Prakashan
P. B. 108, Kachauri Gali
Varanasi—1 (India)

C Editors

Price Rs. 5.00

First edition 1973

Printers :

Spaceage Printers,
Municipal Market,
Maheshi Gate,
Jammu (Tawi)

आमुख

'राजेन्द्रकर्णपूर' मध्ययुग के काश्मीरी कवि शम्भु की अपने आश्रयदाता काश्मीरनरेश हर्षदेव की प्रशस्ति है। कल्हण की राजतरङ्गिणी के अनुसार इस हर्षदेव ने अपने जीवन में उत्कर्ष और अपकर्ष दोनों देखे, उत्कर्ष काल में वह प्रताप और शौर्य से जितना उत्कृष्ट था नैतिक गुणों से भी उतना ही प्रशंसनीय था पर अपकर्ष काल में वह इतना पतित हो गया था कि काश्मीर के दुर्भाग्य का सूत्रपात ही कर दिया था। जोनराज ने इसी कारण हर्ष को तुरुष्क लिखा था। एक ऐतिहासिक पात्र के व्यक्तित्व से सम्बन्ध रखने के कारण ऐतिहासिक रहने पर भी इस काव्य में इतिहास की सामग्री खोजने पर हमें निराश ही होना पड़ता है। केरल सदृश दूरवर्ती प्रदेश पर भी हर्ष की विजय इसमें बताई गई है। इस प्रकार की अत्युक्तियां इसमें हैं। आज के प्रजातन्त्रयुग में ऐसी प्रशस्तियों को सामान्यतः चाटुकारितामात्र समझा जाता है। परन्तु यदि विशुद्ध साहित्यिक दृष्टिकोण से देखें तो उनके गुणों का सम्मान करना कर्त्तव्य बन जाता है। 'राजेन्द्रकर्णपूर' चमत्कारप्रधान युग की रचना है। अतः उसमें आलङ्कारिक प्रवृत्ति की प्रधानता हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। परन्तु सर्वत्र राजविषयक रतिभाव की प्रधानता रहने से विश्वनाथ के 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' इस लक्षण के अनुसार इस की रसात्मक काव्य में ही गणना उचित है। वस्तुतः इसमें कवि ने प्राचीन उपमानों को भी नवीन रूप में प्रस्तुत करके अपने मौलिक

चिन्तन और कल्पनाशक्ति का परिचय दिया है। इस काव्य का अन्य पाण्डुलिपियों से मिलान करके सम्पादन और प्रकाशन एक स्तुत्य कार्य हुआ है। साथ में हिन्दी अनुवाद और साहित्यिक वैशिष्ट्य की परिचायिका सारगर्भित टिप्पणी से असंस्कृतज्ञ साहित्य-प्रेमी भी इस मधुर रचना का रसास्वादन कर सकेंगे। इसके आरम्भ में दी गई महत्त्वपूर्ण भूमिका ने सोने में सुगन्ध का आधान कर दिया है। पुस्तक का प्रकाशन भी सुन्दर है। इस उत्तम प्रकाशन के लिए डा० वेदकुमारी जी हार्दिक बधाई की पात्र हैं।

दिनाङ्क ३—१०—७२

शिवप्रसाद भारद्वाज
पञ्जाब विश्वविद्यालय
होशियारपुर

प्राक्कथन

व्याकरण, दर्शन, इतिहास तथा काव्यशास्त्र जैसे गम्भीर विषयों पर कश्मीर के आचार्यों ने प्राचीन काल से ही अनेक महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थों का निर्माण किया है। कविता के क्षेत्र में भी यहां के महाकवियों का अनल्प योगदान है। क्षेमेन्द्र, जयानक, बिल्हण, सिल्हण, भल्लट आदि कवियों की कविता कश्मीर के लिए गौरव की वस्तु है। महाकवि बिल्हण ने कश्मीर की ही भूमि को कविता और केसर दोनों की खेती के लिए समान रूप से उर्वरा माना है। उनका कहना है कि कविताविलास और कुङ्कुमकेसर निश्चय ही ही सगे भाई हैं क्योंकि मैंने शारदादेश (कश्मीर) को छोड़कर कहीं और उनकी उत्पत्ति नहीं देखी है।

सहोदराः कुङ्कुमकेसराणां भवन्ति नूनं कविताविलासाः।
न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः।।

विक्रमाङ्कदेवचरित १, २१

इन महाकवियों की पंक्तियों में एकादश शती में उत्पन्न, प्रतिभा के धनी महाकवि शम्भु दो कृतियों को लिए हुए खड़े हैं। राजेन्द्र-कर्णपूर और अन्योक्तिमुक्तालता यह दोनों रचनायें ध्वनिप्रधान होने से उत्तम काव्य हैं। कवि ने स्थान २ पर नई कल्पनायें की हैं। जिनके कारण इस कविता में चमत्कार चरमसीमा तक पहुँच गया है। लगभग ९०० वर्ष पहले लिखे गये इन ग्रन्थरत्नों की न तो कोई संस्कृत टीका ही दिखाई पड़ती है और न ही प्रचलित आलोचना

चिन्तन और कल्पनाशक्ति का परिचय दिया है। इस काव्य का अन्य पाण्डुलिपियों से मिलान करके सम्पादन और प्रकाशन एक स्तुत्य कार्य हुआ है। साथ में हिन्दी अनुवाद और साहित्यिक वैशिष्ट्य की परिचायिका सारगर्भित टिप्पणी से असंस्कृतज्ञ साहित्य-प्रेमी भी इस मधुर रचना का रसास्वादन कर सकेंगे। इसके आरम्भ में दी गई महत्त्वपूर्ण भूमिका ने सोने में सुगन्ध का आधान कर दिया है। पुस्तक का प्रकाशन भी सुन्दर है। इस उत्तम प्रकाशन के लिए डा० वेदकुमारी जी हार्दिक बधाई की पात्र हैं।

दिनाङ्क ३—१०—७२

शिवप्रसाद भारद्वाज
पञ्जाब विश्वविद्यालय
होशियारपुर

प्राक्कथन

व्याकरण, दर्शन, इतिहास तथा काव्यशास्त्र जैसे गम्भीर विषयों पर कश्मीर के आचार्यों ने प्राचीन काल से ही अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का निर्माण किया है। कविता के क्षेत्र में भी यहां के महाकवियों का अनल्प योगदान है। क्षेमेन्द्र, जयानक, बिल्हण, सिल्हण, भल्लट आदि कवियों की कविता कश्मीर के लिए गौरव की वस्तु है। महाकवि बिल्हण ने कश्मीर की ही भूमि को कविता और केसर दोनों की खेती के लिए समान रूप से उर्वरा माना है। उनका कहना है कि कविताविलास और कुङ्कुमकेसर निश्चय ही ही सगे भाई हैं क्योंकि मैंने शारदादेश (कश्मीर) को छोड़कर कहीं और उनकी उत्पत्ति नहीं देखी है।

सहोदराः कुङ्कुमकेसराणां भवन्ति नूनं कविताविलासाः।
न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः॥

विक्रमाङ्कदेवचरित १, २१

इन महाकवियों की पंक्तियों में एकादश शती में उत्पन्न, प्रतिभा के धनी महाकवि शम्भु दो कृतियों को लिए हुए खड़े हैं। राजेन्द्रकर्णपूर और अन्योक्तिमुक्तालता यह दोनों रचनायें ध्वनिप्रधान होने से उत्तम काव्य हैं। कवि ने स्थान २ पर नई कल्पनायें की हैं। जिनके कारण इस कविता में चमत्कार चरमसीमा तक पहुँच गया है। लगभग ९०० वर्ष पहले लिखे गये इन ग्रन्थरत्नों की न तो कोई संस्कृत टीका ही दिखाई पड़ती है और न ही प्रचलित आलोचना

ग्रन्थों में इनकी चर्चा मिलती है। इस कारण इन दोनों काव्यों के अनुवाद और समीक्षा की आवश्यकता अनुभव की गई है। राजेन्द्रकर्णपूर का अनुवाद एवं टिप्पणियां इस पुस्तिका में प्रस्तुत हैं। अन्योक्तिमुक्तालता निकट भविष्य में प्रकाशित की जायेगी।

राजेन्द्रकर्णपूर का प्रस्तुत संस्करण काव्यमाला प्रथम गुच्छक में प्रकाशित संस्करण (क) श्री रणवीर अनुसन्धान संस्थान, रघुनाथ मन्दिर, जम्मू में सुरक्षित हस्तलिखित प्रति सं० ८३१ (ज) तथा वल्लभदेव की सुभाषितावली (बम्बई संस्कृत प्राकृत सीरिज़ १९६१) में उद्धृत पद्यों (सु) के आधार पर तैयार किया गया है।

इस पुस्तिका के सन्दिग्ध स्थलों को स्पष्ट करने में शास्त्रमर्मज्ञ पण्डित काकाराम शास्त्री ने अमूल्य सहयोग दिया है इसके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं। संस्कृत जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् डा० शिवप्रसाद भारद्वाज, एम० ए०, पी एच० डी०, साहित्याचार्य, पञ्जाब विश्वविद्यालय, वी० वी० आर० आई०, होशियारपुर ने आमुख लिखा है एतदर्थ हम उनके आभारी हैं।

हमें आशा है कि यह लघुकृति संस्कृत के विद्वानों एवं प्रेमियों को महाकवि शम्भु की कविता का आस्वादन कराने में सहायक होगी।

गान्धी जयन्ती
२ अक्टूबर, १९७३
जम्मू तवी

वेदकुमारी
रामप्रताप

भूमिका

महाकवि शम्भु कश्मीर के प्रसिद्ध राजा हर्षदेव के सभाकवि थे। हर्ष का राज्यकाल १०८९ ईसवी से ११०१ तक माना गया है अतः शम्भु का समय भी ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जा सकता है। इस बात की पुष्टि मंख के श्रीकण्ठचरित के एक पद्य से भी हो जाती है। मंख का समय हर्षदेव के बाद का है क्योंकि मंख का भाई अलंकार कश्मीर के राजाओं सुस्सल तथा जयसिंह के समय में मन्त्री था। अलंकार के घर पर कश्मीर के तत्कालीन साहित्यकारों की गोष्ठी होती थी जिसका मंख ने विस्तार से श्रीकण्ठचरित के २५वें सर्ग में वर्णन किया है। जिन विद्वानों को मंख ने अपना महाकाव्य सुनाया था उन में से एक महाकवि शम्भु का पुत्र आनन्द था। इस से प्रतीत होता है कि शम्भु मंख से एक पीढ़ी पहले हुए थे। मंख ने कहा है :—

अशेषभिषगग्रण्यं शरण्यं शास्त्रपद्धतेः।
ववन्देऽथ तमानन्दं सुतं शम्भुमहाकवेः॥

(श्रीकण्ठचरित २५.९७)

सभी वैद्यों के अग्रगण्य तथा शास्त्रपरम्परा के जानकार शम्भु-महाकवि के पुत्र आनन्द को मैं नमस्कार करता हूं। इससे ज्ञात होता है, कि वैद्य होने के साथ साथ आनन्द कवि भी थे उनके कुछ पद्य वल्लभदेव की सुभाषितावली में उद्धृत हैं। शम्भु के साथ महा-

कवि पद के उल्लेख से प्रतीत होता है कि उन्होंने किसी महाकाव्य की रचना भी की होगी परन्तु अभी तक उनकी दो कृतियां ही प्रकाश में आई हैं

१. अन्योक्तिमुक्तालता
२. राजेन्द्रकर्णपूर

अन्योक्तिमुक्तालता में बड़ी मार्मिक तथा रोचक अन्योक्तियां हैं।

किसी विद्वत्सभा में मूर्ख को सम्मानित होते देखकर कवि आश्रयदाता को जतलाना चाहता है कि जिस सभा में नाना-विद्याओं और कलाओं की सुगन्धि बिखेरने वाले पण्डित शोभा देते हैं वहां निर्गन्ध जड़बुद्धि को आदर देना समुचित नहीं होता। हार गूंथने वाले माली के प्रति कही इस अन्योक्ति से यही भाव-ध्वनित होता है :—

"सौरभ का आगार जो हार खिले हुए मौलसिरी के फूलों से, लवङ्ग की कलियों से, शेफालिका के मुकुलों से, नीलकमलों से और विचकिल फूलों से आच्छादित और शोभित है उस के बीच, अरे भोले, यह सुगन्धि रहित कुसुम्भ क्यों गूंथ रहे हो? यह तो ठीक रीत नहीं।"

अनुरागिणी नायिकाओं को छोड़ कर चपल धूर्तों से घिरी हुई आकर्षणमयी परन्तु अननुरक्ता किसी अन्य स्त्री में आसक्ति रखने वाले नायक को इस पद्य में कितने सुन्दर ढंग से समझाया गया है :—हे भंवरे! यहां मालती खिली हुई है, इधर मल्लिका लता मुस्करा रही है। अतः उपहास का पात्र बनने को नलिनी के पास क्यों जाते हो? यह कैसी उलटी रीत है? इस नलिनी को लक्ष्य

करके मेंढकों तथा बगुलों में से प्रत्येक के द्वारा गीत गाये जाने पर तुम्हारा पञ्चम स्वर गले में ही रुका रह जायगा। मेंढकों और बगुलों की ऊंची टर्र टर्र ध्वनि में भंवरे की कोमल ध्वनि नलिनी तक पहुंच भी नहीं पाएगी।

प्रतीत होता है शम्भु कवि की सरस कविता को अच्छी तरह समझने वाले रसिक सहृदय कम थे। कुछ ऐसे आलोचक भी रहे होंगे जिन्होंने ईर्ष्यावश शम्भु की कविता की निन्दा की होगी तथा अन्य हीन रचनाओं को उत्तम बताया होगा। ऐसे सहानुभूति शून्य आलोचकों को सुनाते हुए कवि की ऊंट के प्रति उक्ति है :—"यदि तेरा मन कांटों के समूह को पाने और नीम के पत्तों को खाने से आनन्दित होता है तो होता रहे! इसमें क्या हानि है? परन्तु हे ऊंट, मैं तेरी यह धृष्टता कैसे सहन कर लूं जो तू मीठे गन्ने की पोरियों की निन्दा करने में लगा है?" इस प्रकार के अन्याय के शिकार किसी कवि के प्रति शम्भु की अन्योक्ति है :—

"हे इक्षुदण्ड (गन्ने), तुम्हारी जिन पोरियों का रस कश्मीर की सुन्दर रमणियों के अधरों के अमृत के माधुर्य की छाप लिये है और जिन का पका हुआ गुड़ शहद को भी मात करता है, उस सफेद पोरियों के आस्वाद को यह अरसिक ऊंट व्यर्थ ही प्राप्त करते हैं और व्यर्थ ही उनकी निन्दा करते हैं।"

असहृदयों के बीच फंसे कविहृदय की वेदना निम्नलिखित अन्योक्ति में फूट पड़ी है। 'मौलसिरी की छोटी सी बेल पर अल्प-वयस्का नायिका के व्यवहार का आरोप करते हुए कवि कहता है :—

अरी भोली मौलसिरी की बेल! तुम्हें किसने जबरदस्ती

इन कठोर कंटीले करीर के पेड़ों के जंगल के बीच में लगा दिया है जहां तुम्हारी कोमल कलियों, पत्तों तथा अंकुरों तक भंवरे नहीं पहुंच पाते ? मौलसिरी के सुकुमार नन्हें नन्हें नक्षत्राकार फूलों की मादक सुगन्धि भंवरों को मुग्ध कर देने वाली होती है परन्तु पत्तों रहित कांटेदार करीरों के जंगल में खिलते हुए उन फूलों का मूल्य कौन पहचान पाता है ? प्रशंसा और अनुराग की प्यास हृदय में लिए वे फूल वहीं कांटों में गिर कर मुरझा जाते हैं। अपरिचितों से भरी भीड़ में अपने को अकेला पाते हुए कवि की घुटन मौलसिरी के माध्यम से कितने उग्र रूप में प्रकट हुई है ? सुन्दर अतीत की स्मृतियों को कुरेदता हुआ कवि कहता है :—हे सुन्दर भंवरे ! अब आप को खैर के पेड़ से ही याचना करनी है, करीर के पेड़ की ही सेवा करनी है। हम क्या करें ? अब आप के लिए यह कांटेदार वृक्षों वाला भयंकर रेगिस्तानी रास्ता ही उपयुक्त है। वह मल्लिका की कली, नीलकमलों का वह समूह, जूही की वह क्यारी और वह लवङ्गलता, सब के सब दूर चले गये हैं।

निराशा भरे विपरीत वातावरण में जीवन से मृत्यु ही श्रेयस्कर लगने लगती है। जब कभी कवि अपने को चारों ओर से स्वार्थ, घृणा, उपेक्षा तथा अपमान से घिरा पाता है तो उसकी लेखनी सौन्दर्य की सृष्टि नहीं कर पाती। पीड़ा में छटपटाती हुई उसकी आत्मा मृत्यु के आलिङ्गन के लिए विकल हो उठती है। इसी भाव की अभिव्यक्ति लवङ्ग को कही गई इस उक्ति में है :—

हे लवङ्ग ! जिस कुञ्ज में करीर के पेड़ पनप रहे हैं जहां द्रेक के पेड़ खिल रहे हैं, जहां करञ्ज के अंकुर फूट रहे हैं और पीलू विकसित हो रहे हैं, वहां तुम क्यों व्यर्थ खिल रहे हो ? क्यों व्यर्थ

ही रमणियों के हृदयों को बांधने वाली अदाएं धारण कर रहे हो ? यह कैसी रीत है ? तुम टूट ही क्यों नहीं गये ?

इसी प्रकार की अनेक मार्मिक अन्योक्तियों से भरी अन्योक्ति-मुक्तालता महाकवि शम्भु के उन दिनों की रचना प्रतीत होती है जब हर्ष के आपत्तिग्रस्त होने पर उस का राजाश्रय छूट गया था और उसे अन्य असहृदय लोगों के मध्य रहना पड़ा था ।

दूसरी रचना राजेन्द्रकर्णपूर, शम्भु के आश्रयदाता महाराज हर्षदेव की लघुप्रशस्ति है । इस लघु कृति को शुद्धरूप से इतिहास-कोटि में तो रखा नहीं जा सकता, ऐतिहासिक काव्यों में भी इस की गणना उन रचनाओं में करनी उचित है जिन में इतिहास की अपेक्षा साहित्यिक सौन्दर्य को ही अधिक महत्त्व दिया गया है। राजेन्द्रकर्णपूर के ७५ पद्यों मे राजा हर्षदेव के शारीरिक सौन्दर्य, गुणग्राहकता, प्रजापालन आदि गुणों का वर्णन काव्यात्मक शैली में किया गया है । प्रतीत होता है कि शम्भु कवि का मुख्य उद्देश्य अपने आश्रयदाता की स्तुति करके उसका कृपापात्र बनना तथा धन प्राप्त करना था । इसी कारण उसने ऐतिहासिक सामग्री के स्थान पर गुण स्तवन पर बल दिया है। अनुमान है कि कवि की यह कृति महाराज हर्ष के राज्यकाल के पूर्वार्ध में रची गई थी जब उस का यश चरम सीमा पर था । बाद में राजकीय कोष खाली हो जाने पर जब उसने प्रजा को लूटना तथा देवालयों को नष्ट करना शुरू कर दिया और जब रजौरी और दरद देश पर किये गये उसके आक्रमण असफल रहे तब किसी स्वामिभक्त सभाकवि के लिए भी इस प्रकार की प्रशंसात्मक स्तुति लिखना संभव नहीं हो सकता था । राजेन्द्रकर्णपूर में महाराज हर्ष के गुणों का तथा दिग्दिगन्तों में फैली

उसकी कीर्त्ति का काव्यमय वर्णन किया गया है। स्वर्गलोक तथा भूलोक के विविध उपमानों की सहायता से कवि अनेक चित्र प्रस्तुत करता है जो उसके राजविषयक रतिभाव की पुष्टि करते हैं। कई एक चित्र बड़े हृदयस्पर्शी बन पड़े हैं। विद्याप्रेमी महाराज मुञ्ज के निधन पर दुःखित हुई सरस्वती देवी का मार्मिक चित्रण कवि दो पद्यों में प्रस्तुत करता है। अपने को निराश्रित अनुभव करती हुई वाग्देवी के स्तन कांप रहे हैं, उसका अधरोष्ठ आंसुओं से धुल गया है, चेहरे से उदासी टपक रही है, एक हाथ पर गाल टिकाए वह चिन्ता में पड़ी है कि अब उसे कौन सहारा देगा ? कवि उससे पूछता है—'-तुम्हें यह घुटन, यह अशान्ति, यह असन्तोष क्यों है ? तुम खोई खोई, घबराई सी, मुरझाई सी क्यों हो ? क्या महाराजा मुञ्ज का दिवंगत होना तुम्हारी उदासी का कारण है ? तो घबराओ नहीं इस महाराज हर्ष को वही समझो। बुद्धि, यश, कान्ति, त्याग, नीति, विद्यानुराग, सम्पत्ति आदि में यह बिलकुल वैसा ही है।'' सचमुच हर्ष जैसे साहित्यप्रेमी को पाकर सरस्वती नाच उठी। शम्भु कवि के शब्दों में—उस के मनोहर हार और कुण्डल झंकृत हो उठे, कंगन बजने लगे और हिलती हुई सोने की करधनी पुनः शब्दायमान हो उठी। (राजेन्द्रकर्णपूर पद्य १७,३६), हर्ष ने अपने गुणों से ऐतिहासिक महापुरुषों को मात कर दिया है। हर्ष को राम, कर्ण, अर्जुन से बढ़ा चढ़ा कर बतलाते हुए इस पद्य में व्यतिरेक और छेकानुप्रास का सौन्दर्य देखने योग्य है :—

त्वय्युत्पन्ने गुणवति सतां नाभिरामः स राम-
स्त्यागव्यग्रे भवति भवति म्लानवर्णः स कर्णः।
ब्रूमः किं वा बहु ननु धनुर्वेदविद्याविदस्ते
सङ्ग्रामोर्वीपुरहर पुरः स्यादपार्थः स पार्थः ।।

हर्ष की भ्रूलता के हिलने मात्र से कुबेर की नींद भाग जाती है, लङ्कापति रावण शङ्कित हो उठता है कि कहीं मुझ पर आक्रमण न हो जाए। और तो और, दूसरों को रुलाने वाला इन्द्र भी इस राजा से भयभीत हो कर रोने चिल्लाने लगता है। ययाति, दुष्यन्त, रघु, शन्तनु सभी का यश राजा हर्ष के यश के सम्मुख फीका पड़ गया है। (पद्य ३०.३१)

शम्भु कवि ने अपनी इस कृति को राजेन्द्रकर्णपूर नाम देकर कई पद्यों में इस नाम की सार्थकता की ओर संकेत किया है। राजा हर्ष का यशोगान स्त्री, पुरुषों, देवी, देवताओं सभी को कर्णप्रिय है इस लिए उन्हें अन्य कर्णपूरों की आवश्यकता नहीं होती। फूलों के देश कश्मीर में स्त्रियां नाना प्रकार के फूलों से अपना साज सिंगार करती थीं परन्तु अब हर्ष के यश सुनने में ही उनके कर्णों की रुचि है अतः कवि पुष्पों कलिकाओं को निश्चिन्त पनपने का आश्वासन देता है। मुक्तामणियों के आभूषण भी नारियों को प्रिय थे जिस कारण दक्षिण देश की ताम्रपर्णी नदी से बार बार मुक्ता लाए जाते थे परन्तु अब मृगनयनी स्त्रियां मोतियों की मालाओं की अभिलाषा नहीं करतीं। ताम्रपर्णी नदी को एक नायिका के रूप में चित्रित करता हुआ कवि उसे सन्देश भेजता है कि चूंकि अब उस के मोतियों का अपहरण नहीं होगा अतः वह निश्चिन्त हो कर सज-धज कर प्रिय मिलन की तैयारी करे।

हर्ष का शुभ्र यश पर्वतों, नदियों, समुद्रों, दिशाओं, दिगन्तों तक जा फैला है। उपमा, काव्यलिङ्ग और तद्गुण अलंकारों की सहायता से कवि ने इस यश के प्रभाव का वर्णन करते हुए कहा है कि अन्धकार को समाप्त करता हुआ और दिग्मण्डलों को धो डालता

हुआ यह यश आकाश में व्याप्त हो गया है और इस शुभ्र यश की श्वेतिमा में प्रत्येक वस्तु अपना रंग छोड़ कर श्वेत प्रतीत हो रही है। सामान्य पर्वत हिमाच्छादित कैलाश प्रतीत हो रहे हैं, सर्प शेषनाग लग रहे हैं, सामान्य समुद्र श्वेत दुग्धसागर प्रतीत हो रहे हैं, हाथी ऐरावत दिखाई दे रहे हैं तथा पुंस्कोकिल हंस प्रतीत हो रहे हैं। (पद्य ४)

हर्ष का यह यशोविस्तार उस के शारीरिक सौन्दर्य, विद्याप्रेम तथा शौर्य के कारण है। उसकी सुन्दरता का स्मरण आते ही रमणियों के होश ठिकाने नहीं रहते (पद्य ११)। स्वर्ग में भी ज्यों ही चारण उस का स्तवन आरम्भ करते हैं त्यों ही मोतियों से सजे केशों वाली अप्सरायें कामातुर हो उठती हैं। (पद्य ३८) मरुत् गण उसके सौन्दर्य की चर्चा करने लगते हैं तो सुनते ही उर्वशी दुबली होने लगती है, रोहिणी मुरझा जाती है और रम्भा कामज्वर से पीड़ित हो जाती है।

वीरता में हर्ष राजा नल से भी बढ़कर है। (पद्य ५१)। नित नयी विजयों को प्राप्त करता हुआ उस का खड्ग भगवान् कृष्ण की समानता करता है। रक्षा कार्य में उत्सुक और तीनों लोकों में विख्यात इस खड्ग ने युद्ध की कथा को ही समाप्त कर दिया है। (पद्य ३४) इस ने चोल, कर्णाट, मुरल, केरल तथा लाट देश की स्त्रियों की शोभा का हरण कर लिया है (पद्य ६)। कोंकण और कुन्तल के राजा भी उस से भयभीत होकर भाग गये हैं पद्य २)। दो पद्यों में मरुस्थल की विजयों की ओर भी संकेत किया गया है। (पद्य २१, ५६)। धनुष की डोरी के चिह्न से अंकित हर्ष की भुजा ने सम्पूर्ण पृथ्वी का भार सम्भाल लिया है

इस कारण कूर्मावतार तथा दिशाओं के हाथी निश्चिन्त होकर आराम कर रहे हैं (पद्य ४७)। कवि पृथ्वी से प्रार्थना करता है कि अब उसे अपने धारणार्थ कच्छप, शेषनाग तथा दिग्गजों पर आशा नहीं रखनी चाहिये। एक अन्य पद्य में कवि यह दावा करता है कि उसने पृथ्वी तथा स्वर्ग सभी जगह पता कर लिया है कि सौन्दर्य में, कीर्तिप्रेम में, नीति में, लोकपरिचय में तथा काव्यरचना के कार्य में राजा हर्ष की होड़ करने वाला कोई भी व्यक्ति कहीं भी कभी नहीं हुआ। स्वयं गुणों का आगार महाराज हर्ष गुणियों का आदर भी करता है इसीलिए उसे "गुणिमौलिमण्डनमणि" तथा "गुणिबान्धव" बताया गया है (पद्य ४३, ४४)।

कल्हण द्वारा वर्णित हर्ष

राजतरंगिणी के रचयिता महाकवि कल्हण ने भी महाराज हर्ष के गुणों की पर्याप्त प्रशंसा की है। किशोरावस्था में ही वह अपने अनुपम पौरुष और अनुपम गुणों के कारण संसार में प्रसिद्ध हो गया था। सभी देशों की भाषाओं को वह जानता था और उन विभिन्न भाषाओं में कविता भी रचता था। सभी विद्याओं के निधान के रूप में उसकी प्रसिद्धि दूसरे देशों में भी जा पहुँची थी। विद्वानों के प्रति उसका प्रेम इतना अधिक था कि स्वयं भूखे रह कर भी अपने जेब खर्च में से उन विद्वानों को वेतन देकर पालता था जिन्हें उसका लोभी पिता कलश आश्रय न देता था। उच्च कोटि के गायक की तरह गीत गाकर वह राजसभा में अपने पिता राजा कलश को प्रसन्न कर देता था और पारितोषिक में मिले धन से कवियों तथा विद्वानों का भरण-पोषण करता रहता था।

(राजतरंगिणी तरंग ७. पद्य ६०९—६१३)।

जब वह स्वयं सिंहासन पर बैठा तो उसने विद्वानों को रत्न-जटित आभूषणों, पालकियों, रथों, छत्रों आदि से सम्मानित किया। जिस प्रकार समुद्र से प्रेम करके मेघ सारे संसार को जल से सन्तुष्ट कर देते हैं उसी प्रकार उस हर्ष से धन मांगने वाले याचक भी अन्य याचकों का पालन करने में समर्थ हो जाते थे। अपने दान से कल्प-वृक्ष को भी पराजित करने वाले उस राजा हर्ष की राजसभा का वर्णन करते हुए कल्हण लिखता है :—"इन्द्र से भी अधिक लक्ष्मी वाले उस राजा के सभामण्डप के सौन्दर्य का पूरा वर्णन भला कौन सा बृहस्पति कर सकेगा? शामियानों से वह मण्डप बादलों से ढका हुआ सा लगता था। चारों ओर के दीपकों के प्रकाश से ऐसा लगता था मानों अग्नि की चारदीवारी से घिरा हो, सुवर्णदण्ड बिजली की तरह चमकते थे और तलवारों के समूह धूएं जैसे लगते थे। सुन्दर स्त्रियां अप्सराओं सी, मन्त्रिगण नक्षत्रों से, विद्वज्जन ऋषियों जैसे और गायक गन्धर्वों जैसे प्रतीत होते थे। कुबेर और यमराज दोनों का निवासस्थल बना हुआ वह सभामण्डप दान और भय दोनों की क्रीडास्थली था।" हज़ारों दीपों के प्रकाश से जगमगाते उस सभामण्डप में वह राजा विद्वानों के साथ शास्त्रचर्चा, गीत तथा नृत्य आदि से रातें बिताता था।

(राजतरंगिणी, तरंग ७ पद्य ९३९—९४९)।

प्रजा की प्रार्थना सुनने के लिए उसने अपने महल के चारों द्वारों पर बड़े बड़े घण्टे बंधवा दिये थे और उनकी ध्वनि सुनते ही वह प्रार्थियों से मिलता और उनकी मांगों को ऐसे पूरा कर देता जैसे वर्षा ऋतु का मेघ चातकों की पुकार सुनकर उनकी प्यास बुझा देता है। उस के राजमहल में मन्त्री, प्रतिहार तथा सामन्त सोने

के कंकण तथा जंज़ीरें पहने हुए घूमते थे। महल में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जो रंगबिरंगे वस्त्र और सुवर्ण आभूषण न पहने हो। राजा हर्ष की समृद्धि और उदारता की यह कथा दूर दूर तक जा पहुंची थी। राजा कलश के राज्यकाल में कश्मीर छोड़ कर दक्षिण देश के कर्णाटक प्रदेश के राजा पर्माडि के पास गया हुआ बिल्हण वहां अत्यधिक सम्मानित था। राजा पर्माडि ने उसे विद्यापति का पद देकर अपने समक्ष हाथी की सवारी करने तथा छत्र धारण करने का सम्मान दिया था। इस सब सम्मान को प्राप्त करके भी जब बिल्हण ने राजा हर्ष देव के श्रेष्ठ कवियों के प्रति प्रेमभाव और उदार व्यवहार की प्रशंसा सुनी तो उसे कर्णाटक के सभी वैभव झूठे लगने लगे।

(राजतरंगिणी, तरंग ७ पद्य ८८०–८३, ९३५–३७)।

हर्ष के सौन्दर्य का भी कल्हण ने बड़ा सजीव चित्रण किया है। "उसके कानों में सूर्य के समान चमकीले कुण्डल शोभा देते थे, ऊंची पगड़ी पर ऊंचा मुकुट बंधा होता था। उसके नयन प्रसन्न सिंह के नयनों की तरह थे, लम्बी दाढ़ी की अपनी ही शोभा थी। बैल के कन्धों की तरह पुष्ट कन्धे, बड़ी बड़ी भुजायें, श्यामलोहित वर्ण, चौड़ी छाती और पतला मध्यभाग था। उसकी आवाज मेघ की गर्जना के समान गम्भीर थी। इन सब विशेषताओं से उसके समक्ष बड़े बड़े अतिमानवों की प्रतिभा भी कुण्ठित हो जाती थी।

हर्ष का पतन

राज्य के प्रारम्भिक दिनों में तो हर्ष की उदारता, भावुकता और सौन्दर्यप्रियता ने उसे जनता तथा राजकर्मचारियों का प्रिय

बना दिया था परन्तु अन्ततो गत्वा यह उसके लिए अभिशाप सिद्ध हुए। कवियों, गायकों आदि से झूठी सच्ची प्रशंसा पाकर उस ने खुले हाथों उन पर धन लुटाया। विलासिता के वशीभूत होकर अन्तःपुर को सैंकड़ों सुन्दर स्त्रियों से भर लिया। धीरे धीरे राजकीय कोष खाली हो गया और तब अविवेकी मन्त्रियों की सलाह मान कर उसने जनता को लूटना शुरू कर दिया (राजतरङ्गिणी तरङ्ग ७ पद्य ९६०–६३)। कन्दर्प जैसे विद्वान् और निपुण मन्त्री को लोहर प्रान्त में भेज दिया और वहां भी उसे कैद करने का प्रयास किया (पद्य ९९६–१००६)। अपने भतीजों को गुप्त रीति से मरवा दिया (पद्य १०६८–६९)। देवालयों से सुवर्ण, रत्न आदि लूट लिये (पद्य १०८६–९५)। एक बार कर्णाटक के राजा पर्माडि की पत्नी चन्दला का चित्र देख कर वह इतना कामातुर हो उठा कि निर्लज्ज हो कर उसने भरी सभा में पर्माडि राजा को पराजित कर के चन्दला को प्राप्त करने की प्रतिज्ञा कर ली (पद्य १११९–२१) वह इस प्रतिज्ञा को पूरा तो नहीं कर पाया परन्तु धूर्त लोग चन्दला का नाम ले कर उससे अपार धनराशि लूटते रहे। रजौरी पर आक्रमण करना उसकी भूल थी और उससे भी बड़ी भूल रास्ते में ही पृथ्वीगिरि नामक किले पर घेरा डालने की थी। परिणामस्वरूप उसे रजौरी तथा दरद इन दोनों प्रदेशों पर किये आक्रमणों में असफलता मिली। अपने सहायकों उच्चल तथा सुस्सल को विरोधी बना कर वह विनाश की ओर ही अग्रसर हुआ और अन्त में बड़ी दयनीय स्थिति में मारा गया। इस प्रकार राजतरंगिणी में महाराज हर्ष का वर्णन १४०० से कुछ अधिक पद्यों में किया गया है। कल्हण ने हर्ष की पर्याप्त प्रशंसा की है, उसके सौन्दर्य आदि गुणों की सराहना की है परन्तु उसने राजा के दुर्गुणों

को भी नहीं छुपाया। राजतरङ्गिणी के हर्षविषयक इस भाग का और राजेन्द्रकर्णपूर का तुलनात्मक अध्ययन एक निष्पक्ष इतिहासकार और एक आश्रयभोगी सभाकवि के दृष्टिकोण में जो अन्तर है उसे स्पष्ट कर देता है। कल्हण किसी राजदरबार के आश्रित नहीं था, शम्भु सभाकवि था। दोनों कवियों की स्थिति में यह मौलिक अन्तर दोनों की शैली के अन्तर का प्रमुख कारण है।

एक में कविप्रतिभा थी परन्तु ऐतिहासिक तथ्यों और घटनाओं की अधिकता के कारण उसकी कविता का कलापक्ष पूर्णरूपेण सामने नहीं आ सका, दूसरे में उक्तिवैचित्र्य की क्षमता थी परन्तु अपने आश्रयदाता के विरुद्ध लेखनी उठाने का साहस नहीं था अतः उसकी रचना ऐतिहासिक दृष्टि से एकपक्षीय रही। इसी कारण वल्लभदेव (१४५०–१५०० ई०) ने उसके पद्यों को अधिकतर राजकीय चाटुकारी के अन्तर्गत उद्धृत किया है।

राजेन्द्रकर्णपूर

साहित्यिक दृष्टि से यह लघुकाव्य एक मनोरम रत्न है जिस की आभा सहृदय पाठकों को आनन्दित कर देती है। रस, भाव और अलङ्कारमयी शैली प्रसादगुण से युक्त है। कलापक्ष की प्रधानता होने पर भी भावपक्ष उपेक्षित नहीं है। अलङ्कारों की छटा दर्शनीय है। अनुप्रास, यमक, शब्दश्लेष इन शब्दालङ्कारों का तथा उपमा, रूपक, प्रतीप, उत्प्रेक्षा, निदर्शना, तद्गुण, व्यतिरेक, काव्यलिङ्ग, परिणाम, परिकर, दीपक, अतिशयोक्ति आक्षेप, यथासंख्य, अर्थान्तरन्यास, अत्युक्ति आदि अर्थालङ्कारों का प्रयोग किया गया है। इन सब अलङ्कारों से कविनिष्ठ राजविषयक रत्याख्य भाव-

ध्वनि सम्पुष्ट होती है। क्योंकि इस काव्य का विषय व्यक्ति का स्तवन है अतः इसे पढ़ते समय आलम्बन विभाव बने हुए राजा के साथ पाठक का पूर्णरूपेण साधारणीकरण नहीं हो पाता। अतिशयोक्ति का बाहुल्य भी इस साधारणीकरण में बाधा उपस्थित करता है। कालिदास का यक्ष तो आज भी कहीं भी किसी वियोगी हृदय में टटोला जा सकता है परन्तु सौन्दर्य, कीर्त्ति आदि सभी उदात्तगुणों से युक्त राजा हर्ष का मिलना कठिन है (पद्य ४५)। परिणामस्वरूप इस कविता को पढ़ते हुए पाठक के हृदय के स्थायिभाव उद्बुद्ध तो होते हैं, आनन्द की एक लहर का स्पर्श भी करा देते हैं, परन्तु परिपक्व हो कर रसदशा को प्राप्त नहीं कर पाते। यही इस काव्य का दुर्बल पक्ष है। कहीं कहीं विरोधी भावों का सहावस्थान भी खटकता है। ५६वें पद्य में भयानक और शृङ्गार के मध्य किसी अन्य रस का प्रयोग विरोध का परिहार करने के लिए नहीं किया गया। ७०वें पद्य में शृङ्गार तथा करुण इन दो विरोधी रसों का वर्णन है। यश की धवलता का बार बार वर्णन करने से पुनरुक्ति दोष आगया है (पद्य ४ १०, ६८)। उपमान भी प्रायः इतिहास पुराणों से लिये गये हैं अतः उन में नवीनता कम है। जहां तक भाषा का प्रश्न है राजेन्द्रकर्णपूर की भाषा में शब्दचयन तथा वाक्यविन्यास दोनों ही बड़े सुन्दर बन पड़े हैं। मुख्यरूप से समग्रगुणा वैदर्भी रीति का प्रयोग है जिस में ओज, प्रसाद और माधुर्य गुणों का यथोचित समन्वय मिलता है। ओज और कान्ति गुणों से युक्त गौडी रीति का प्रयोग केवल उत्साह तथा भय की पुष्टि के लिए किया गया है (पद्य ६, ८, ६३)।

कई पद्यों में श्लेष का प्रयोग किया गया है परन्तु अधिकतर

पद्य सरल शैलो मे निबद्ध हैं। शब्दालंकारों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में है परन्तु वे न तो भाषा को बोझिल बना रहे हैं और न ही भावाभिव्यक्ति में बाधा उपस्थित कर रहे हैं। निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्तियों के वाचक शब्दों और उन व्यक्तियों के गुणों के बोधक शब्दों को अनुप्रास और यमक के मञ्जुल गठबन्धन में बांध कर कवि ने भावप्रेषणीयता में सरलता ला दी है :—

किं मौनं ननु मेनके किमु शुचिं धत्से शचि क्षामता
केयं वाचि घृताचि साचि किमिदं रम्भे मुखाम्भोरुहन् ? पद्य ४८॥

यो वैरिष्वनलो नलो वसुमतीदीपो दिलीपोऽथ यो
यो मानेन पृथुः पृथुर्जगति यो निर्लाघवो राघवः।
यः कीर्तौ भरतो रतो नृपगुणैर्यः शंतनुः शंतनुः
संजाते त्वयि कस्य न क्षितिपते सर्वेऽपि ते विस्मृताः। पद्य ५१॥

कई स्थानों पर अनुरणनात्मक शब्दों या ध्वन्यात्मक शब्द-चित्रों से भावों की अभिव्यक्ति सहज सरलता से हुई है। इन ध्वनि-प्रतीकों को समझने में श्रोता को प्रयास नहीं करना पड़ता, वे स्वतः उसके हृदय को छू लेते हैं। उदाहरणार्थ ३२वें पद्य की प्रथम पंक्ति में ल् वर्ण की असकृत् आवृत्ति झूलते हुए मोतियों और लहराती हुई अलकों का स्पष्ट चित्र आंखों के सामने ला देती है और दूसरी पंक्ति में ञ् ङ् के प्रयोग से बजते हुए कंगनों की छन छन कानों को सुनाई देने लगती है :—

लोलन्मौक्तिकवल्लि वेल्लदलकं वाचालकाञ्चीगुणं
चञ्चत्काञ्चनकङ्कणं च गिरिजा जातोत्सवा नृत्यतु।

इस प्रकार भाषा और भाव इन दोनों दृष्टियों से शम्भु कवि की कविता उत्तम काव्य की कोटि में रखी जा सकती है। गतानुगतिक संस्कृत आलोचक प्रायः उसी रचना को उत्तम काव्य मानते हैं जिसके साथ रस जुड़ा हो परन्तु यह झूठा व्यामोह है। उत्तम-काव्य की वास्तविक आत्मा तो ध्वनि है भले ही यह ध्वनि वस्तु रूप हो, अलङ्कार रूप हो, भावरूप हो या रस रूप हो। भावध्वनि-प्रधान इस रचना को रसविहीन भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि भाव और रस का अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध है; रस भावहीन नहीं होता और भाव रसहीन नहीं होता।

न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः।
परस्परकृता सिद्धिरनयो रसभावयोः॥ भरतना० ६, ३६

कवि ने वस्तुध्वनि, अलङ्कारध्वनि तथा भावध्वनि की सहायता से प्रत्येक पद्य में कोई न कोई बिम्ब उपस्थित किया है जो वर्ण्य विषय का एक समग्र चित्र पाठक के सामने ला देता है। इन चित्रों से सजा यह छोटा सा एलबम ग्यारहवीं शताब्दी में हुए कश्मीर के प्रसिद्ध महाराजा हर्ष की एक झलक देने के साथ साथ पाठकों को अलौकिक उस काव्यसुरभि से आवर्जित कर लेता है जो कश्मीर के कुंकुम केसर की सुगन्धि से कम नहीं है। कश्मीर के रुद्रट और मम्मट जैसे आचार्यों का काव्यशास्त्र के प्रति योगदान तो विश्वविख्यात है ही, किन्तु शम्भु और क्षेमेन्द्र जैसे महाकवियों की कवितायें पढ़कर यह स्पष्ट हो जाता है कि काव्यनिर्माण के क्षत्र में भी कश्मीरी कवि किसी से पीछे नहीं हैं।

—वेद कुमारी

राजेन्द्रकर्णपूरः

बद्धस्पर्धः क्षितिधरसुताभ्रूलतावक्रतायां*
भूयाद् भूत्यै तव हरशिरः शेखरो रोहिणीशः ।
यं निष्पीड्य स्तनमुखनखोल्लेखरेखासु देव्याः
संभोगान्ते वितरति सुधास्यन्दमर्धेन्दुमौलिः ।।१।।

पार्वती जी की सुन्दर भवों की भङ्गिमा से होड़ करने वाले शिवजी के मस्तक के आभूषण बने हुए वह रोहिणीपति चन्द्रदेव आप का कल्याण करें जिन्हें निचोड़ कर अर्धचन्द्र को धारण करने वाले शिवजी रतिक्रीड़ा के अन्त में पार्वती के स्तनों के अग्रभाग पर नाखूनों के द्वारा कचोटने से उत्पन्न रेखाओं पर अमृत रस छिड़कते हैं।

टिप्पणी :—इस पद्य में असम्बन्धातिशयोक्ति तथा निदर्शना अलंकारों की तिलतण्डुलन्याय से पृथक् पृथक् स्थिति है। चन्द्रमा का निष्पीडन क्रिया के साथ असम्बन्ध है तथापि इस असम्बन्ध में सम्बन्ध बताया गया है अतः असम्बन्धातिशयोक्ति है। जड़ चन्द्रमा द्वारा पार्वती की भ्रूलता की वक्रता के साथ होड़ करना असम्भव है परन्तु यहां इस होड़ की कल्पना की गई है। इससे पर्यवसान में यह उपमागर्भित अर्थ प्रतीत होता है कि भ्रूलता की वक्रता के सदृश ही चन्द्रमा की वक्रता है। इस कारण यहां निदर्शना है। दोनों अलंकारों की पृथक् पृथक् स्थिति के कारण संसृष्टि अलंकार है। श्रृङ्गार

*वक्रतायं (क)

रस है। इन सबसे कविनिष्ठ शिवविषयक भावध्वनि पुष्ट हो रही है।

अव्यात्स* वस्ताण्डवविभ्रमेण
मौलौ§ विलीना हरिणाङ्कलेखा।
सा यस्य वामे कुचमण्डलाग्रे
कर्पूरपत्राङ्कुरटङ्कमेति ॥२॥

ताण्डवनृत्यक्रीडा के कारण सिर की जटाओं में से विलुप्त हुई वह चन्द्रकला जिन शिवजी के वामस्तन के अग्रभाग पर कर्पूर द्वारा निर्मित पत्ररचना की शोभा को प्राप्त होती है वह महादेव जी आप की रक्षा करें।

टि० :—इस पद्य में तद्गुण अलंकार है। शिवजी जब ताण्डव नृत्य करते हैं तो उनके सिर पर स्थित अर्धचन्द्र नीचे खिसक कर (अर्धनारीश्वर शिव के) बायें मोटे स्तन पर आ टिकता है। कवि कल्पना करता है कि वहां वह चन्द्र कर्पूरपत्र रचना का रूप धारण कर लेता है। अर्धचन्द्र की शोभा एक अलग वस्तु है। कर्पूरपत्र-रचना की शोभा उस से भिन्न वस्तु है। यहां चन्द्र की शोभा अपने गुणों को छोड़ कर कर्पूरपत्ररचना के गुणों को धारण करती हुई बताई गई है अतः तद्गुण अलंकार है। (तद्गुणः स्वगुणत्यागादन्य-दीयगुणग्रहः कुव० १४)। यहां महादेवविषयकरत्याख्यभाव ध्वनि है।

---

*अध्यात्म (ज)　　§मोले (ज)

प्रेमाणं विनिमील्य मल्लिकलिकाकर्णावतंसे रसं
मुक्त्वा मौक्तिककुण्डले कुरुत भोः शंभोर्गिरः कर्णयोः ।
युष्माकं रतिकान्तकार्मुकलताङ्कैंकारकान्ते रुते
सोत्कण्ठं कलकण्ठकण्ठकुहरोद्भूतेऽपि मा भून्मनः ॥३॥

हे रसिको ! मल्लिका की कलियों के बने कर्णाभूषणों में प्रेम समाप्त करके, मोतियों के बने कुण्डलों में रुचि छोड़ कर शम्भु कवि की उक्तियों को कानों में लगाओ। अब तुम्हारा मन कामदेव की धनुर्लता (आम्रमंजरी) की कैं कैं ध्वनि के समान मनोहर कोकिल-कण्ठ से निकली ध्वनि सुनने को उत्कण्ठित नहीं होना चाहिए।

टि० :—इस पद्य में व्यतिरेक अलंकार ध्वनि है क्योंकि व्यञ्जना द्वारा यहां शम्भु कवि की वाणी को मल्लिका की कलियों से बने कर्णाभूषणों, मोतियों से जड़ित कुण्डलों और कोकिल की मधुर ध्वनि से बढ़ चढ़ कर बताया गया है। केङ्कारकान्ते में इव का लोप होने से वाचकलुप्तोपमा है। भावध्वनि की पुष्टि हो रही है।

व्याप्तव्योमलते* मृगाङ्कधवले निर्धौतदिङ्मण्डले
देव त्वद्यशसि प्रशान्ततमसि प्रौढे जगत्प्रेयसि ।
कैलासन्ति महीभृतः फणभृतः शेषन्ति पाथोधयः
क्षीरोदन्ति सुरद्विपन्ति करिणो हंसन्ति पुंस्कोकिलाः ।४।

हे दिव्यगुणों वाले राजन् ! अन्धकार को समाप्त करता

*तले (ज)

हुआ, दिशाओं के मण्डलों को धो डालता हुआ, संसार को अत्यधिक प्रिय लगने वाला चन्द्रमा के समान शुभ्र तुम्हारा यश सुन्दर आकाश में फैल गया है और [उस के प्रकाश में] साधारण पर्वत कैलास प्रतीत हो रहे हैं, सर्प शेषनाग लग रहे हैं, समुद्र श्वेत दुग्धसागर प्रतीत हो रहे हैं, हाथी ऐरावत दिखाई दे रहे हैं और पुंस्कोकिल हंस प्रतीत हो रहे हैं।

टि० :—यहां अभिप्राय यह है कि महाराजा हर्ष के शुभ्र यश की श्वेतिमा में हर वस्तु अपना रंग छोड़ कर श्वेत प्रतीत हो रही है। "मृगाङ्कधवले त्वद्यशसि" में इव न होने से वाचकलुप्तोपमा है, कैलासन्ति महीभृतः आदि में धर्मवाचकलुप्तोपमा के उदाहरण हैं। पर्वतों के कैलाशवत् प्रतीत होने का कारण श्वेत यश का विस्तार है अतः उपमा और काव्यलिङ्ग का संकर है। अन्तिम दो पंक्तियों में विभिन्न वस्तुएं अपने गुण छोड़ कर दूसरी वस्तुओं के गुणों को ग्रहण करती हुई दिखाई गई हैं अतः तद्गुण अलंकार भी है। इनसे राज-विषयक रतिभाव की पुष्टि हो रही है।

कैलासाचलसानुसीमनि मरुत्सीमन्तिनीभिस्तथा
गीतास्ते कलकण्ठकण्ठनिनदश्रव्यैः स्वरैः कीर्तयः ।
अप्युत्तंसविलासवानपि रते रत्नप्रदीपो यथा
चूडाचन्द्रकलाङ्कुरः पुरजिता सद्यः प्रसादीकृतः ॥५॥

कैलास पर्वत की चोटियों के अग्रभाग में मरुत् नामक देव-गणों की सुन्दर वनिताओं ने कोयल के गले की ध्वनि के समान सुनने योग्य (मधुर) स्वरों से तुम्हारे यशों को कुछ ऐसे गाया जिसके

परिणामस्वरूप शिरोभूषण की प्रचुर शोभा से सम्पन्न और रति काल में मणिमय प्रदीप के समान कोमल चन्द्रमा की कला को महादेव जी ने तुरन्त ही उपहार के रूप में दे दिया।

टि० :—अभिप्राय यह है कि जैसे किसी गायिका के गाने से प्रसन्न होकर धनी व्यक्ति धन, हीरक तथा अपने अङ्गों में पहनी हुई अंगूठी आदि वस्तुओं को इनाम के रूप में दे देते हैं वैसे ही शिवजी ने गायन से प्रसन्न होकर मानों चन्द्रमा को पुरस्कार के रूप में दे दिया है।

यहां कविनिष्ठ राजविषयक रत्याख्यभावध्वनि का शिवनिष्ठ राजविषयक स्थायिभाव अङ्ग बन गया है। कलकण्ठनिनदश्रव्यैः में इव का लोप होने से वाचक लुप्तोपमा है। रत्नप्रदीप के समान चन्द्रमा को इनाम की वस्तु के रूप में बना देने के कारण यहां उपमालङ्कार परिणामालङ्कार को पुष्ट कर रहा है जब तक चन्द्रमा को रत्नप्रदीप नहीं समझा जाता तब तक उसको इनाम की वस्तु भी नहीं समझा जा सकता।

चौडी* चूडाभरणहरणः कीर्णकर्णावतंसः
कर्णाटीनां मुषितमुरली† केरली हारलीलः।
कुर्वन्नुर्वीतिलक तिलकोत्सृष्ट‡ लाटीललाटं
जीयादेकस्तव नवयशः स्वर्णशाणः कृपाणः ॥६।

हे भूमि के तिलक (शोभा) राजन्! चोल देश की नारियों

*चोडी †मुरले (ज) ‡त्सिच (ज)

के शिरोभूषणों का अपहर्ता, कर्णाट देश की स्त्रियों के कर्णाभूषणों को बिखेरने वाला तथा मुरल तथा केरल देश की सुन्दरियों के हार चुराने की क्रीड़ा करने वाला, लाट देश की वनिताओं के मस्तक को तिलकविहीन करता हुआ नये यश रूपी स्वर्ण के लिए कसौटी बना हुआ आप का खड्ग विजय प्राप्त करे।

टि० :—यहां खड्ग के विशेषण शत्रुनारियों के वैधव्य को सूचित करने वाले हैं इन साभिप्राय विशेषणों के कारण यहां परिकरालङ्कार है। यहीं वैधव्य की सूचना रूप व्यंग्यार्थ अभिधा से कह दिये जाने के कारण पर्यायोक्त अलंकार भी है। यहां यश में सोने का आरोप तथा खड्ग में शाण का आरोप है। जब तक यश में सोने का आरोप नहीं होता तब तक कृपाण में शाण का आरोप नहीं हो सकता। एक के ऊपर एक का ही आरोप होने के कारण यहां निरङ्ग केवलपरम्परित रूपक है। इन अलङ्कारों से वीर रस सम्पुष्ट हो रहा है।

शान्त्यै दर्पवतां जयाय जगतां संपत्तये याचतां
सम्मानाय सतां हिताय महतां तापाय पृथ्वीभृताम्।
सोल्लासेन सकौतुकेन शमितध्यानेन दूरीकृत-
स्वाध्यायेन समाप्तसर्वतपसा त्वं वेधसा निर्मितः ॥७॥

प्रसन्नता से भरे हुए, कुतूहल पूर्ण, ध्यान को छोड़ने वाले, वेदाध्ययनादि के स्वाध्याय को छोड़े हुए, सभी प्रकार की तपस्या को खत्म करने वाले ब्रह्मा ने अभिमानियों (के अभिमान) की शान्ति के

लिए, सारे संसार को जीतने के लिए, याचकों को सम्पत्ति देने के लिए, सज्जनों के आदर के लिए, पूजनीय महापुरुषों के भले के लिए और पृथिवी के स्वामी राजाओं को सन्ताप देने के लिए आप को बनाया है।

टि० :—यहां एक राजा के साथ युगपत् शत्रुशमन आदि अनेक प्रयोजन रूप भाव जुड़े हुए हैं इस कारण यहां समुच्चय (बहूनां युगपद्भावभाजां गुम्फः समुच्चयः। कुवलयानन्द ११५) अलंकार है। निर्मितः क्रिया के साथ अनेक 'शान्त्यै' आदि कारकों का सम्बन्ध होने के कारण कारक दीपक भी है। इन दोनों ही अलंकारों की सम्भावना होने से यहां सन्देह संकरालंकार है और इससे कविनिष्ठ राजविषयक रतिभाव की पुष्टि हो रही है।

...किं* वान्यद्वसुधापुरंदर पुरस्त्वत्पौरुषस्य क्वचि-
न्नार्हत्यस्खलितक्रमोऽपि गगने त्रैविक्रमो विक्रमः ॥८॥

हे इस पृथिवी के स्वामी राजन्! तुम्हारे सम्बन्ध में और क्या कहा जाय? आकाश में लड़खड़ाती चाल वाला विष्णुपराक्रम भी तुम्हारे सामने टिक नहीं सकता।

टि० :—यहां पराक्रम के विशेष ज्ञान के लिए 'किं वान्यत्' पद का प्रयोग होने से आक्षेपालङ्कार (वस्तुनो वक्तुमिष्टस्य विशेषप्रतिपत्तये निषेधाभास आक्षेपः.....॥ सा० द० १०, ६५) है। जब

*पूर्वार्धं त्रुटितम्

तुम्हारे सामने इन्द्र का पराक्रम भी नहीं टिक सकता तो दूसरों की तो बात ही क्या है ? इस प्रकार दण्डापूपिका न्याय से और अर्थ आने के कारण यहां अर्थापत्ति अलङ्कार भी है। इन दोनों अलङ्कारों से, कविनिष्ठ राजविषयक रति भाव से यहां वीर रस की पुष्टि हो रही है।

देवाकर्णय नाकिनां पुरि नृणां लोके पुरे भोगिना-
मासन्केचन सन्ति केचन तथा स्थास्यन्ति ये केचन।
तन्मध्ये न बभूव नास्ति भविता तादृङ् न नीतौ नतौ
कान्तौ काव्यरतौ मतौ रिपुहतौ कीर्तौ च यस्ते समः ॥९॥

हे राजन् ! सुनिये ! स्वर्गवासियों की नगरी अमरावती में, मनुष्यों के लोक मर्त्य लोक में और पाताल लोक में जो कोई लोग थे, जो कोई हैं तथा और जो कोई आगे होंगे। उनके बीच में नीति में, नम्रता में, सुन्दरता में, काव्यप्रेम में, बुद्धि में, शत्रु नाश में और यश में वैसा न तो कोई हुआ है और न कोई है और न ही कोई होगा जो तुम्हारे समान हो सके।

टि० :—यहां मति आदि अनेक कारकों और बभूव, नास्मि भविता आदि क्रियाओं का राजा से सम्बन्ध होने से कारक दीपक और क्रिया दीपक है और यहां राजा के नीति, नम्रता शौर्यादि गुणों का अद्भुत तथा अतथ्यपूर्ण वर्णन होने से अत्युक्ति अलङ्कार है। कविनिष्ठ रत्याख्य स्थायिभाव अद्भुत रस का अङ्ग बन रहा है।

आनन्दं मुचुकन्दकन्दलि भज स्वस्थासि वासन्तिके
कल्याणं तव मल्लिके कुशलिनी जातासि हे मालति ।
अद्यैतद्यशसि श्रुतिप्रणयितां याते न कुर्वन्ति वः
कर्णोत्तंसरसा*न्नवीनकलिकाभङ्गं कुरङ्गीदृशः ॥१०॥

हे मुचुकन्द के अङ्कुर ! प्रसन्नता को प्राप्त करो, हे वासन्ती लता, तुम नीरोग और सन्तुष्ट रहो, हे मल्लिका लता तुम्हारा शुभ हो और हे मालती लता तुम अब राजी खुशी रहोगी । क्योंकि आज इस राजा के यश के कर्णप्रिय हो जाने पर मृगनयनियां कर्णाभूषणों के प्रति प्रेम के कारण तुम्हारी कलियों को नहीं तोड़तीं ।

टि० :—यहां यश का कर्णाभूषण बनने के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है इस कारण यहां असम्बन्ध में सम्बन्ध होने रूप असम्बन्धातिशयोक्ति है । यश के कर्णाभूषण रूप में परिणत हो जाने से परिणामालङ्कार भी है । आपके यश ने सुन्दरियों की फूलों के प्रति रुचि नहीं रहने दी है इस कारण आप का यश फूलों से अधिक बढ़कर है इस रूप में यहां व्यतिरेकालङ्कार ध्वनि है । कविनिष्ठ राजविषयक रति से यहां अद्भुत रस की सम्पुष्टि हो रही है। भावध्वनि ।

चैत्रं मा स्मर विस्मर स्मर रतिं किं सायकैर्मारकै-†
र्गोधां मुग्ध मुधा बधान‡ जहिहि ज्याबन्धधीरं§ धनुः ।
देवेऽस्मिन्हि सकृत्£ स्मृतेऽपि न मतिर्नैव स्मृतिर्न स्थिति-
र्नासक्तिर्न धृतिर्न निर्वृतिरपि क्वाप्यस्ति वामभ्रुवाम् ॥११

*रसेण । †र्मा करे (ज) । ‡गोधां मुग्ध बधान किं च । §वीरं (ज)।
£मुहुः (ज)

हे कामदेव ! तुम [वसन्त ऋतु के] चैत्र मास का स्मरण मत करो, अपनी पत्नी रति को भूल जाओ और [प्रेमियों के] संहारक तुम्हारे बाणों का भी अब कोई उपयोग नहीं रहा है। अरे मूर्ख ! अब तुम [अपने बायें हाथ में] चमड़े की पट्टी को व्यर्थ बांधे हो, डोरी के बन्धन से स्थिर धनुष को छोड़ दो अर्थात् तुम्हें सुन्दरियों को जीतने के लिए किसी भी साधन की आवश्यकता नहीं; क्योंकि इस राजा हर्षदेव का एक बार स्मरण भर कर लेने पर किसी भी स्थान पर सुन्दर भौंहों वाली रमणियों के पास न बुद्धि रहती है, न ही स्मरण शक्ति रहती है, न जमकर एकत्रावस्थान रहता है, न सांसारिक पदार्थों के प्रति रुचि रहती है, न धैर्य रहता है और न शान्ति रहती है।

टि० :—प्रस्तुत श्लोक में सुन्दरियों के आकर्षण के कारणभूत आलम्बन विभाव राजा का वर्णन है और उनकी कामावस्थाओं का वर्णन भी है। राजा हर्ष के देखने पर उनमें विविध प्रतिक्रियाओं के उत्पन्न होने से संयोग शृङ्गार है। अस्ति क्रिया का बहुत सारे कर्तृ कारकों के साथ सम्बन्ध होने से यहां क्रियादीपक है और राजा के रूप की शक्ति का अद्भुत तथा अतथ्यपूर्ण वर्णन होने से अत्युक्त्यलङ्कार (अत्युक्तिरद्भुतातथ्यशौर्यौदार्यादिवर्णनम् कुवलयानन्द १६३) है।

जहाति नगरीं गलत्कनककङ्कणः कौङ्कणो
वनं विशति विह्वलः स्खलितकुन्तलः कौन्तलः।
किमन्यदुदितक्रुधि त्वयि मृगेन्द्रभीमारवं
तटं विशति मारवं च्युतरमालवो मालवः ॥१२॥

[हाथ से] निकले हुए सुवर्ण निर्मित कंगन वाला कोङ्कण देश का राजा अपनी नगरी को छोड़ कर जा रहा है। खुले हुए और हिलते हुए बालों वाला कुन्तल देश का राजा जंगल में घुस रहा है। और क्या कहा जाय, थोड़ी सी भी लक्ष्मी से विहीन अर्थात् अत्यन्त दरिद्र मालव देश का राजा तुम्हारे क्रोध के प्रकट होने पर सिंहों के भयङ्कर शब्द वाले रेगिस्तान के ढलानों में जाकर घुस रहा है।

टि० :—यहां कविनिष्ठ राजविषयक रतिभाव वीर रस का अङ्ग बन रहा है। वीर रस के आलम्बन विभाव राजा के पराक्रम का वर्णन करते हुए दूसरे राजाओं की भयपूर्ण चेष्टाओं से वीररस की पुष्टि हो रही है। यहाँ 'कङ्कणः कौङ्कणः' और 'कुन्तलः, कौन्तलः' इन दो स्थलों पर व्यञ्जनों की अनेकधा (स्वरूप और क्रम से) आवृत्ति हुई है इस कारण छेकानुप्रास है और अन्तिम पाद में 'रमालवो मालवः' पद समूह में निरर्थक और सार्थक पदों की आवृत्ति होने से यमकालङ्कार है।

तां संक्रन्दनमन्दिरे सुरवधूकर्णामृतस्यन्दिनीं
त्वत्सौन्दर्यकथां निशम्य गदितामानन्दिभिर्वन्दिभिः।
चापं मुञ्चति बाणमुज्झति शुचं धत्ते रतिं नेक्षते
चित्रं चैत्रमुपेक्षते परिणमन्मन्दव्यथो मन्मथः ॥१३॥

आनन्दित वन्दिगणों द्वारा गाई गई, इन्द्रालय (स्वर्ग) में देवाङ्गनाओं के कानों में अमृत बहाने वाली अर्थात् कर्णानन्दजनक उस विलक्षण सुन्दरता की कहानी को सुन कर यह अचरज की बात है कि हल्के २ रूप में क्रमशः बढ़ती हुई पीड़ा वाला कामदेव धनुष

को छोड़ रहा है, बाण का परित्याग कर रहा है, शोक को धारण करने लगा है, [दुःखी होने के कारण] अपनी पत्नी रति की ओर भी नहीं देखता है और चैत्र मास की उपेक्षा करने लगा है।

टि० :—यहां एक मन्मथ कर्त्ता क मुञ्चति आदि अनेक क्रियाओं के साथ सम्बन्ध होने से कारकदीपकालङ्कार है। कविप्रौढोक्तिसिद्ध इस अलङ्कारध्वनि से राजा के सौन्दर्यातिशय रूप वस्तुध्वनि की प्रतीति होकर शृङ्गार रसध्वनि की अभिव्यक्ति हो रही है। 'तां' पद में अर्थान्तरसङ्क्रमितवाच्य ध्वनि है और इसका अभिप्रेतार्थ है—सर्वविद्वज्जनवीरगणयौवतेषु प्रसिद्धाम्'।

कीरीहारलतासु केरलवधूधम्मिल्लमालासु* या
चोलीदन्तचतुष्किकासु मुरलीलीलास्मितेषु द्युतिः।
अग्रे त्वद्यशसां सुधाकरकरन्यक्कारपारंगमा-
मप्येतामसितामहो सुकवयो विन्दन्ति निन्दन्ति† च ॥१४॥

कीरदेश की सुन्दरियों के उत्तम पुष्पहारों में, केरल देश की युवतियों के गुंथे हुए केशों की चमेली आदि पुष्पों अथवा मुक्तादि की मालाओं में, चोल देश की रमणियों के अगले चार दांतों में तथा मुरल देश की वनिताओं की ललित मुस्कानों में जो चमक है चन्द्रमा की किरणों का तिरस्कार करके आगे बढ़ने वाली अर्थात् चन्द्रकिरणों से भी अधिक धवल उस द्युति को जब उत्तम कवि तुम्हारे यश की तुलना में काले रंग वाली पाते हैं तो उसको निन्दा करते हैं।

---

*मल्लीषु। †निन्दति च (ज)।

टि० :—यहां द्युति का 'कीरीहारलता' आदि तीनों वस्तुओं के साथ सम्बन्ध होने से दीपकालङ्कार है। सुधाकर इत्यादि में यह द्युति चन्द्रकिरणातिशायिनी है ऐसा अर्थ होने से व्यतिरेकालङ्कार है। द्युति का कालिमा के साथ कोई सम्बन्ध नहीं हैं फिर भी उसको कृष्णवर्ण वाली बतलाया गया है इस कारण असम्बन्ध होने पर सम्बन्ध बताया जाने से असम्बन्धातिशयोक्ति है। इन सभी अलङ्कारों से यहां अद्भुत रस की पुष्टि हो रही है।

विषमेषु विगलितरसाश्चपलतरंगालिभिर्जडैः क्षुभिताः।
तिमिर चितवसतयस्तव रिपुसुदृशो निम्नगा जाताः ॥१५॥

रिपुनारी पक्ष—कामदेव के द्वारा उत्पन्न हुए शृङ्गार रस की अनुभूति वाली, मूर्ख लम्पटों के द्वारा अपशब्दों से बड़ी चंचलता के साथ क्रुद्ध की गई और अंधकारों से व्याप्त घरों वाली तुम्हारे शत्रुओं की नारियां नदियां बन गई हैं।

नदी पथ— ऊंचे नीचे स्थलों में बहते हुए जल वाली, चञ्चल तरंगों की परम्परा वाले जलों के कारण हिलोरें लेती हुई, मछलियों के निवास वाली नदियां शत्रुनारियां बन गई हैं।

टि० :—यहां परिवृत्त्यसह श्लिष्टार्थक पदों से अनेक अर्थों की प्रतीति होने से शब्दश्लेष है और इस अलङ्कार के द्वारा ('रिपु सुदृशो निम्नगा जाताः' शत्रुनारियां नदी रूप हो गई हैं) रूपकालङ्कार पुष्ट होने से श्लेषानुप्राणित रूपकालङ्कार है। यहा शत्रुनारीस्थित करुण रस से कविनिष्ठ राजविषयक रतिभाव की पुष्टि हो रही है इस कारण यहां भामह के अनुसार रसवदलङ्कार है और मम्मट प्रभृति आचार्यों के अनुसार गुणीभूतव्यङ्ग्य है।

अङ्के केरलसुन्दरीकचभरश्यामं कलङ्कं वाहन्
मिथ्यारोहति पूर्वपर्वतशिखां मुग्धस्तमीबान्धवः ।
यत्तापिच्छतरुच्छदच्छवि तमो लुम्पन्ति* लिम्पन्ति† च
प्रालेयैरिव पारदैरिव जगत्कोशं भवत्कीर्तयः ॥१६॥

केरल देश की सुन्दरियों के समूह के समान काले धब्बे को गोद में धारण करता हुआ यह चन्द्रमा व्यर्थ ही उदयाचल पर्वत की चोटी पर चढ़ रहा है। क्योंकि आपकी कीर्त्तियां तमाल वृक्ष के पत्तों की शोभा के समान शोभा वाले कृष्णवर्ण अन्धकार से भरे जगत् को मानों हिमवर्षा से अदृश्य सा बना रही हैं और मानों पारे से लीप सी रही हैं।

टि० :—यहां लुम्पन्ति च लिम्पन्ति च में स्वरूप और क्रम से एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास है। कीर्त्ति की व्यापन क्रिया में लोपन और लेपन क्रिया का संशय होने से उत्प्रेक्षालङ्कार है। प्रालेयैरिव के साथ लुम्पन्ति का और पारदैरिव के साथ लिम्पन्ति का क्रमिक सम्बन्ध होने से यथासङ्ख्य अलङ्कार है। चन्द्रमा की चांदनी से भी कीर्त्तियों में अधिक धवलता का गुण है इस कारण यहां व्यतिरेकालङ्कार भी है। इन सब अलङ्कारों से कविनिष्ठ राजविषयक रत्याख्यभाव की पुष्टि हो रही है।

---

*लुम्पति (ज)। †लिम्पति (ज)।

तस्थौ कम्पतरङ्गितस्तनतटं वाष्पाम्बुधौताधरं
शोकाक्रान्तकपोलकीलितकरं द्यां मुञ्जराजे गते ।
संजाते त्वयि हारिहारवलयक्वाणं क्वणत्कङ्कणं
चञ्चत्काञ्चनकाञ्चि सा भगवती नर्नर्ति वाग्देवता ॥१७॥

मुञ्जराज के दिवङ्गत हो जाने पर कम्पन से थरथराते स्तनाग्रों एवं अश्रुजलों से धोये हुए अधरोष्ठ से युक्त तथा मरण दुःख से व्याप्त गाल पर रखे हुए हाथ वाली होकर जो पहले निश्चेष्ट हो गई थी वह वाणी की अवतार सरस्वती देवी अब तुम्हारे उत्पन्न होने पर मनोहर हार और कुण्डल की ध्वनि वाली तथा बजते हुए कंगन और चंचल सोने की तगड़ी को धारण कर बार २ नाच रही है ।

टि० :—यहां रति और शोक इन दो विरोधी स्थायिभावों में एकत्रावस्थान रूप विरोध है जो सरस्वती पहले दुःखी थी वह अब सुखी क्यों है ? किन्तु पहले मुञ्जराज के मर जाने पर वह अपने को गुणप्रिय राजा के अभाव में दुःखी समझती थी पर अब वह श्री हर्ष के आजाने पर सुखी है। आपाततः विरोध दिखाई देने से यहां विरोधाभास अलङ्कार है। पर्यवसान में आलम्बन भेद और काल भेद से इस विरोध का परिहार हो जाता है। इस अलङ्कार से कविनिष्ठ राजविषयक रति भाव पुष्ट हो रहा है ।

आलेख्यं *चिरमुल्लिलेख विजने सोल्लेखया रेखया
संकल्पानकरोद्विकल्प† बहुलाकल्पाननल्पानपि ।
अद्राक्षीद‡ परप्रजापतिमतं चक्रे च तीव्रव्रतं§
त्वन्निर्माणविधौ कियन्न विदधे बद्धावधानो विधिः ॥१८॥

एकान्त स्थान में उस विधाता ने लम्बी २ रेखाओं से बहुत देर तक तुम्हारे चित्र को बनाया अर्थात् तुम्हें बनाने से पहले ध्यान पूर्वक तुम्हारा खाका बनाया। बड़े सोच विचार के साथ बहुत से अलङ्कारों, वेषभूषा और सजावट के बारे में बड़ा चिन्तन किया। दूसरे प्रजापतियों की सम्मति को भी जाना [और उस पर ध्यान दिया] और बड़े बड़े उपवासादि व्रतों को किया। इस प्रकार हे राजन्! तुम्हें बनाने के कार्य में विधाता ने कितना कुछ नहीं किया अर्थात् सब कुछ किया।

टि० :—विधाता जितना प्रयत्न औरों के निर्माण के लिए करते हैं उतना ही प्रयत्न हर्ष राजा को बनाने में किया गया है किन्तु यहां आलेख्यादि रूप असम्बन्ध में सम्बन्ध बताने से असम्बन्धातिशयोक्ति है। प्रभावातिशय का अतथ्यपूर्ण वर्णन होने से अत्युक्ति अलंकार भी माना जा सकता है। इन दोनों अलंकारों से अद्भुत रस की पुष्टि हो रही है। यह राजा लोकोत्तर है इस व्यङ्ग्यार्थ की प्रतीति हो रही है।

---

*निजम् (सु) २६११। †विचार (ज)। ‡अप्राक्षीत् (ज)।
§तीव्रं व्रतं (ज)

शेष क्लेशमशेषमुत्सृज भज त्वं कूर्म कर्म स्वकं
स्वैरं खेलत सिन्धुसैकतलताकुञ्जेषु दिक्कुंजराः ।
अप्येतां सकुलाचलां सनगरां साम्भोनिधिं सापगां
सद्वीपां च भुवं बिभर्ति हि भुजः श्रीहर्षपृथ्वीभुजः ॥१६॥

१६. अरे शेष नाग ! तुम पृथिवी को धारण करने का अपना सारा कष्ट छोड़ो, हे कच्छपावतार ! तुम अपना काम करते रहो (पृथिवी को उठाने का काम छोड़कर घूमने फिरने का काम करो) । अरे दिशाओं के हाथियो ! तुम स्वेच्छा से समुद्र के रेत और लताकुञ्जों में खेलो (तुम्हें किसी प्रकार की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है) क्योंकि कुल पर्वतों समेत, नगरों सहित, सम्पूर्ण सागरों वाली, सारी नदियों और सारे द्वीपों समेत इस भूमि को श्री हर्ष की भुजा धारण कर रही है ।

टि० :—यहां शेषादि प्राणियों से अपना २ कष्टकर कार्य छोड़कर निश्चिन्त रहने को कहा गया है और साथ ही राजा हर्ष ने पृथिवी का सारा भार उठा लिया है, ऐसा कारण बतलाया है इस प्रकार यहां कार्य का कारण द्वारा समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है । राजा का पराक्रम शेषादि से बढ़-चढ़ कर है इस रूप में व्यतिरेकालंकार ध्वनि है इन दोनों अलंकारों से कविनिष्ठ राज-विषयक रत्याख्यभाव की पुष्टि हो रही है और साथ ही श्री हर्ष का सार्वभौमत्व व्यङ्ग्य है । पुराणों में इन कुल पर्वतों का उल्लेख मिलता है—

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः ।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ॥

हेरम्ब त्यज कर्णतालनिनदं चूडापगे गर्ज मा
मा मा कांचनकिङ्किणीकलकलं कण्ठे ककुद्मन्कृथाः ।
प्रक्रांतासु सुरैः पुरः पुररिपोर्युष्मद्यशोगीतिषु
व्यग्रस्येति परिस्फुरन्ति वचमान्यानन्दिनो नन्दिनः ॥२०॥

हे गणेश ! आप अपने कानों की फड़फड़ाहट को छोड़ो, शिव की जटाओं में रहने वाली गङ्गे ! आप अब गरजो नहीं, हे वृषभ ! तुम गले में सोने की घण्टियों की मधुर और अव्यक्त आवाज़ को मत करो। इस प्रकार के वचन—देवताओं के द्वारा राजा हर्षदेव के यशोगान के आरम्भ हो जाने पर ध्यान पूर्वक सुनने में लगे हुए आनन्दित—नन्दी नाम के शिव के अनुचर [के मुख] से निकल रहे हैं।

टि० :—यहां आपके यश की चर्चा स्वर्ग में भी हो रही है इस प्रकार की असम्बद्ध वस्तु में सम्बन्ध होने के कारण असम्बन्धातिशयोक्ति है। आपके यशोगान की ध्वनि अत्यन्त कर्णमधुर है जिसको सुनते समय श्रोतागण थोड़ी सी भी आहट को सहन नहीं कर सकते—यह वस्तु से वस्तुध्वनि भी निकल रही है। पर्यवसान में राजा के प्रभावातिशय की प्रतीति होती है।

अकङ्कणमेखला* गुणमहारमस्ताङ्गदं
व्रजन्ति चतुरैः पदैर्मरुमरातिवामभ्रुवः ।
करोत्यसिलतां करे यदसिगर्व† मुर्वीभुजो
भुजस्य परिपन्थिनामयमदक्षिणे दक्षिणे‡ ॥२१॥

---

*समेखलां (ज)। †यदि सगव मुर्वीभुजो (ज)। ‡दक्षिणः (ज)

जब यह पृथिवीपालक राजा अभिमान के साथ शत्रुओं की भुजा के लिए क्रूर अपने दायें हाथ में उत्तम खड्ग को धारण करता है तो कंगन तथा करधनी की डोरी के बिना अर्थात् करधनी की डोरी को तोड़ देने के कारण दोनों के बिना, हार रहित होकर और बाजूबन्द को फेंक कर तुम्हारे शत्रुओं की सुन्दर नारियां तीव्र कदमों से मरुस्थल की ओर चली जाती हैं।

टि० :—यहाँ राजा के शौर्यातिशय का वर्णन होने से अत्युक्ति अलंकार है। शत्रुनारियों के भय का आलम्बन (राजा) होने से यहां वीर रस है।

राकाकान्तकलाङ्कुरं कुरु चिरं चण्डीश चूडान्तरे
कच्छं गच्छ पुराणकच्छप परं गम्भीरमम्भोनिधेः।
ध्यानं मुञ्च विरञ्च* किं च पयसा सिञ्चासनाम्भोरुहं
येनायं परितः प्रभोः प्रसरति प्रौढः प्रतापानलः ॥२२॥

हे पार्वती के स्वामी महादेव जी! आप देर तक चन्द्रमा की कला को अपनी जटा के बीच में रखे रहो। हे नित्य और शाश्वत कच्छपावतार! आप गहरे सागर के बहुत गहरे कछार में चले जाओ। अरे ब्रह्मा! आप ध्यान त्याग कर अपने आसन के कमल को जल से सींचो क्योंकि चारों ओर हमारे राजा हर्षदेव की प्रचण्ड प्रताप रूपी अग्नि फैल रही है।

टि० :—अभिप्राय यह है कि चारों ओर राजा की प्रखर प्रताप

---

*विरिंच (ज)।

रूपी अग्नि से भीषण गर्मी फैल गई है। इस गर्मी से बचने के लिए अनेक प्रकार के कार्यों को करने के लिए महादेव जी आदि को कहा गया है। कार्यों का कारण द्वारा समर्थन होने से यहां अर्थान्तरन्यास अलंकार है। आसनाम्भोरुह और प्रतापानल में उपमेय के ऊपर उपमान का आरोप होने से रूपकालंकार है। इन दोनों अलंकारों से कविनिष्ठ राजविषयक रतिभाव की पुष्टि हो रही है और राजा का प्रभावातिशय व्यंग्य है।

कन्दर्पे नलकूबरे* कुमुदिनीकान्तेऽप्यवज्ञावतां
त्वत्सौन्दर्यकथासु तासु मरुतां वृत्तासु कौतूहलात्।
प्राप्ता तानवमुर्वशी रतिरतिक्लान्ता हता रोहिणी
जाता किं च खरस्मर† ज्वरभरा रम्भापि रम्भातनुः ॥२३॥

कामदेव, नलकूबर नामक कुबेर के पुत्र, तथा चन्द्रमा की अवज्ञा करने वाले घटिया होने के कारण इन सब की अवहेलना करने वाले मरुद्गणों के द्वारा कौतूहलवश तुम्हारे सौन्दर्य की उन कथाओं के सुनाने में लग जाने पर उर्वशी दुबली हो गई, रति अत्यन्त थकी हो गई, चन्द्रमा की पत्नी रोहिणी मृतप्राय हो गई। केले के समान कोमल शरीर वाली नलकूबर की पत्नी रम्भा प्रचण्ड कामज्वर से आक्रान्त हो गई।

टि० :—वस्तुतः स्वर्ग में न तो मरुद्गणों ने राजा की स्तुति आरम्भ की है और न ही उर्वशी आदि पर उस स्तुति का किसी

---

*नडकूबरे (ज) (सु) २६१६। †जाता वेदखरस्मर (ज)।

प्रकार का प्रभाव दृष्टिगोचर हो सकता है किन्तु कवि ने राजा के सौन्दर्यातिशय को अभिव्यक्त करने के लिए असम्बन्ध में सम्बन्ध की कल्पना की है इस कारण यहां असम्बन्धातिशयोक्ति अलङ्कार है। सौन्दर्यातिशय का वर्णन होने से अत्युक्त्यलङ्कार की भी सम्भावना की जा सकती है। इन दोनों अलङ्कारों से कविनिष्ठ राजविषयक रतिभाव पुष्ट हो रहा है।

सोल्लासा अपि सोद्यमा अपि घनोत्कण्ठा अपि क्वापि नो
यान्ति श्यामनिशान्तरेऽपि रमणोपान्तं कुरङ्गीदृशः।
सद्यस्त्वद्यशसा हि कुञ्जररदच्छेदच्छविच्छादिना*
नीतं कान्तपुरंध्रिकुन्तलभरश्यामं विरामं तमः ॥२४॥

उल्लसित हुईं भी, उद्योग करने वाली होते हुए भी, प्रियमिलन की बड़ी अभिलाषा से भरी हुइ भी मृगनयनी सुन्दरियां काली रात के मध्य में भी कहीं भी अपने प्रेमियों के पास नहीं जाती हैं। क्योंकि हाल में ही हाथी दांत के टुकड़े की कांति को आच्छादित (तिरस्कृत) करने वाले तुम्हारे यश ने सुन्दर रमणियों के बालों के समान काले अन्धकार को दूर कर दिया है।

टि० :—यहां उल्लास, उद्यम और उत्कण्ठा रूप कारण सामग्री के होते हुए भी प्रियमिलन रूप कार्य नहीं हो रहा है रात्रियों का यश के द्वारा धवल हो जाना इस में कारण है। इस लिए यहां उक्तनिमित्ता विशेषोक्ति है। रात्रियों ने अपने कृष्ण स्वरूप को छोड़

*छविच्छेदिना (ज)।

कर यश के शुभ्र वर्ण को ग्रहण कर लिया है इस कारण तद्गुण अलंकार है। अभिसारिकायें उल्लासादियुक्त होते हुए भी प्रिय से नहीं मिल रही हैं उनके इस कार्य का समर्थन यश द्वारा रात्रि के शुभ्र हो जाने रूप कारण से हो रहा है इस कारण यहां अर्थान्तर-न्यास अलंकार है। इन अलंकारों से कविनिष्ठ राजविषक रति-भाव की पुष्टि हो रही है, और राजा के यशोऽतिरेक की अभि-व्यञ्जना हो रही है

न क्वाप्यौर्वज्वलनमहसा यस्य चक्वाथ पाथः
शोषं* तस्मिन्भजति जलधौ त्वत्प्रतापानलेन।
शङ्के पङ्के पतति यतते बालशैवालमूले
कूले लोलः किमपि कुरुते कर्म वैकुण्ठकूर्मः ॥२५॥

समुद्र की अग्नि की ज्वालाओं के ताप से भी जिसका पानी नहीं उबला उस समुद्र के तुम्हारी प्रताप रूपी अग्नि से सूख जाने पर भगवान् विष्णु का कच्छपावतार कीचड़ में धंस रहा है, छोटी २ सिवार घास की जड़ों में घुसने का यत्न कर रहा है और चञ्चल होकर तट पर बैठा हुआ [अपने आप को असहाय सा समझ कर] कुछ का कुछ कर रहा है ऐसी मेरी कल्पना हैं।

टि० :—यहां वड़वानल के ताप की अपेक्षा राजा की प्रतापाग्नि अधिक प्रभावशाली है इस अर्थ को बताने के कारण व्यतिरेका-लङ्कार ध्वनि है। पतति यतते और कुरुते इन तीनों क्रियाओं

---

*शेषं (ज)।

का वैकुण्ठकूर्म रूप एक कारक के साथ सम्बन्ध होने से कारक-दीपकालंकार है। समुद्र के सूख जाने पर, कच्छप के इधर उधर भटकने, कीचड़ आदि में घुसने आदि की क्रियाओं की सम्भावना होने से यहां उत्प्रेक्षालंकार भी है। इन सब अलंकारों के एक वाक्यानु-प्रवेश रूप संकर से राजा का प्रतापातिशय प्रकट होता है और कविनिष्ठ राजाविषयक रतिभाव भी पुष्ट हो रहा है।

उल्लेखं निजमीक्षते भणितिषु प्रौढिं परां शिक्षते
संधत्ते पदसंपदः* परिचयं धत्ते ध्वनेरध्वनि।
वैचित्र्यं वितनोति वाचकविधौ वाचस्पतेरन्तिके
देव त्वद्गुणवर्णनाय कुरुते किं किं† न वाग्देवता ॥२६॥

देवी सरस्वती अपने लिखे हुए को दुबारा पढ़कर देखती है। सुन्दर २ वचन कहने के लिए बहुत बड़ी प्रवीणता सीखती ह। सुन्दर २ पदों की शोभाओं को धारण करती है अर्थात् उपयुक्त पदों को चुनती है। ध्वनि के मार्ग [प्रयोग] से सम्बद्ध ज्ञान प्राप्त करती है। देवताओं के गुरु बृहस्पति के पास स्तुति पाठ के कर्म के लिए विचित्र उपायों का विस्तार करती है अर्थात् विचित्र ढंग से स्तुति-गान करने के लिए बृहस्पति से शिक्षा प्राप्त करती है। इस प्रकार हे महाराज ! आपके गुणों का वर्णन करने के लिए वाग्देवी सरस्वती क्या २ नहीं करती ?

टि० :—यहां सरस्वती क्या २ नहीं करती है इस कथन से सब कुछ करती है इस अर्थ की प्रतीति होने से अर्थापत्ति है। किं किं

---

*संदत्ते पदमस्मदः (ज)। †वा (ज)।

न कुरुते यह अर्थ अनुपपद्यमान है। इससे सर्वं कुरुते इस अर्थ की प्रतीति हो रही है। देवी सरस्वती राजा का गुणगान पूरी सावधानी से करती है यह अर्थ कविकल्पनामात्र होने से कविप्रौढोक्तिसिद्ध वस्तु ध्वनि है। किं किं न कुरुते? यहां काक्वाक्षिप्त गुणीभूत-व्यङ्ग्यध्वनि है क्योंकि पहले एक अर्थ आने पर 'सर्वं कुरुते' इस व्यङ्ग्यार्थ का बोधन हो रहा है।

शान्तध्वान्तकलङ्क शंकरशिखालंकार तारापते
राकाकान्त सविभ्रमं भ्रम सदा निःशङ्कमङ्के दिवः।
अद्यैतद्यशसैव सप्तसु कृतालोकेषु लोकेषु हि
स्वर्भानोर्भवितासि नासि नभसि च्छिन्नाकृतेर्गोचरः ॥२७॥

समाप्त हुए काले कलङ्क वाले, महादेव जी की जटाओं के आभूषण, नक्षत्रों के स्वामी, पूर्णिमा के पति हे चन्द्रदेव! अब आप आकाश की गोद में हमेशा निश्चिन्त होकर शान के साथ घूमो, क्योंकि आज इस राजा की कीर्त्ति से ही सारे लोकों के प्रकाशित हो जाने पर इस आकाश में आप सिर कटे राहु की दृष्टि के विषय नहीं बनोगे अर्थात् इस राजा की कीर्त्ति से धवल आकाश में तुम फीकी आभा के कारण राहु को नहीं दिखाई पड़ोगे।

टि० :—आकाश का रंग नीला होता है किन्तु वह अपने रंग को छोड़ कर श्वेत रंग का हो गया है अपने असली गुण का त्याग करके दूसरे गुण को धारण करने के कारण यहां तद्गुणालङ्कार है। राहु चन्द्रमा को ग्रसता है ऐसा लोकप्रसिद्ध है किन्तु अब वह दिखाई न दे पाने के कारण उसे नहीं ग्रसेगा इस रूप में यहां असम्बन्ध में

सम्बन्ध पाये जाने के कारण असम्बन्धातिशयोक्ति है। 'शान्तध्वान्त' में न्त, भवितासि नासि आसि में व्यञ्जनसङ्घात की आवृत्ति से अनुप्रास और सविभ्रमं भ्रम, कृतालोकेषु लोकेषु में निरर्थक और सार्थक पदों की आवृत्ति होने से यमकालङ्कार है। चन्द्रमा की अपेक्षा कीर्त्ति अधिक शुभ्र है इस रूप में व्यतिरेकध्वनि है इन अलङ्कारों से भावध्वनि की पुष्टि हो रही है।

त्वय्युत्पन्ने गुणवति सतां नाभिरामः स राम-
स्त्यागव्यग्रे भवति भवति म्लानवर्णः स कर्णः।
ब्रूमः किं वा बहु ननु धनुर्वेदविद्याविदस्ते
सङ्ग्रामोर्वीपुरहर पुरः स्यादपार्थः स पार्थः ॥२८॥

गुणवान् आप के उत्पन्न होने पर अब सज्जनों को वह लोकप्रिय राम प्यारे नहीं रहे, आपके दान देने में तत्पर हो जाने पर वह दानवीर कर्ण मलिनवर्ण हो गये हैं (उनके मुख की कान्ति फीकी पड़ गई है)। युद्ध भूमि में महादेव रूप हे राजन्! और अधिक आप के बारे में क्या कहें! धनुर्वेदविद्या के जानकार आपके सामने वह लोकविख्यात धनुर्धर अर्जुन भी व्यर्थ साबित होगा।

टि० :—यहां नाभिरामः स रामः, म्लानवर्णः स कर्णः, पुरहर पुरः अपार्थः स पार्थः में व्यञ्जनसमुदाय की स्वरूप और क्रम से एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास है। राम, कर्ण और अर्जुन की अपेक्षा गुण, दान और अस्त्रविद्या में राजा का अधिक उत्कर्ष पाये जाने के कारण यहां व्यतिरेकालङ्कार है। लोकोत्तर समृद्धि और पराक्रमातिशय का वर्णन होने से उदात्त और अत्युक्ति अलङ्कार भी

हैं। "सङ्ग्रामोर्वीपुरहर" में उपमेय पुरहर महादेव जी के ऊपर राजा रूप उपमान का आरोप होने से निरङ्गरूपक है। इन सब अलङ्कारों से भावध्वनि पुष्ट हो रही है।

कान्ति कल्पय तान्तिमल्पय सखि स्वल्पापि नैवास्ति ते
मुक्ताशुक्तिषु वारिराशिरमणि श्रीताम्रपर्णि क्षतिः।
अस्यालोक्य कुरङ्गकेतनकलालावण्यचौरं यशो
वर्तन्ते हि विमुक्तमौक्तिकलतोत्कण्ठाः कुरङ्गीदृशः ॥२६॥

हे सखि ! तुम अपने प्रिय से मिलन की चाह पैदा करो अथवा साज सिंगार करो। ग्लानि अर्थात् आत्महीनता की भावना को कम करो। समुद्र की पत्नी हे ताम्रपर्णी नदी ! अब तुम्हारे सुन्दर मोतियों की थोड़ी सी हानि भी नहीं होगी क्योंकि इस राजा के चन्द्रकला के सौन्दर्य को चुराने वाले शुभ्र यश को देख कर मृगनयनियों ने उत्तम मोतियों की मालाओं की चाह छोड़ दी है।

टि० :—यहां आन्ति, अल्पय पदों की स्वरूप और क्रम से सकृत् आवृत्ति होने से छेकानुप्रास है। क् ल् र् आदि वर्णों की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास है। यश के आगे मोतियों की चमक फीकी है, यह व्यतिरेक ध्वनित होता है। यश को देख कर सुन्दरियों की रुचि मोतियों में नहीं रहती, इस रूप में असम्बन्ध में सम्बन्ध बताये जाने से असम्बन्धातिशयोक्ति है तथा यशोतिरेक-वर्णन से अत्युक्ति अलङ्कार भी है। कविनिबद्धवक्त्री सहेली की उक्ति होने से कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्तिसिद्धवस्तुध्वनि है। इन सबसे कविनिष्ठ राजविषयक रतिभाव पुष्ट हो रहा है।

निद्रा न द्रविणाधिपस्य भजते शङ्कां स लङ्कापति-
र्व्योम्नि व्याकुलतामलं कमलिनीकान्तस्य धत्ते वपुः ।
किं वाऽन्यत्तव देव वेल्लति यदि भ्रूवल्लरीपल्लवः
सोऽपि क्षामकपोलकीलितकरः संक्रन्दनः क्रन्दति ।।३०।।

हे महाराज, और क्या कहें, यदि आप की भ्रूलता का पत्ता भी हिलता है तो धन के स्वामी कुबेर के पास नींद नहीं फटकती, लंका का राजा रावण शंकित हो उठता है, कमलिनी के स्वामी सूर्य का निर्मल शरीर बेचैन हो जाता है। वह जगत्प्रसिद्ध पराक्रमी इन्द्र भी कमज़ोर हुए गाल पर हाथ टिका कर (चिन्तामग्न हो कर) रोने लगता है।

टि० :—यहाँ किं वा अन्यत् अधिक क्या कहें, स्वयं कहे इस वचन का विचारपूर्वक प्रतिषेध होने से आक्षेपालङ्कार है। कुबेर आदि के निद्राभंग के साथ राजा की भौंहों का सम्बन्ध न होने पर भी सम्बन्ध बताने से असम्बन्धातिशयोक्ति तथा शौर्यातिशय का अतथ्यपूर्ण वर्णन होने से अत्युक्ति अलङ्कार है। संक्रन्दन पद से यह प्रकट होता है कि जो दूसरों को रुलाने वाले हैं उन्हें भी राजा से डर लगता है। अर्थात् वह उन सब से अधिक पराक्रमी है। इस प्रकार यहाँ व्यतिरेकध्वनि है। निद्रा का हटना, डर लगना आदि एक धर्म को भिन्न २ शब्दों में कहने से प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार है। इन सब से कविनिष्ठ राजविषयक रतिभाव पुष्ट हो रहा है।

अस्तं याति ययातिधाम विगतं दुष्यन्तवार्ताशतैः
शान्तं शन्तनुकीर्तिभिर्लघु रघोर्लोकेषु जातं यशः ।
किं चान्यत्त्वयि मेदिनीकुमुदिनीराकाशशाङ्कोदये
जाते हन्त तथा कथा अपि विभो रामे विरामं गता ॥३१॥

हे राजन् ! आप के सम्बन्ध में और क्या कहा जाय ? यह बड़े विस्मय की बात है कि पृथ्वी रूपी कुमुदिनी के लिए पूर्णिमा के चांद रूप आप के उदित होने पर ययाति का तेज छिप गया है, दुष्यन्त सम्बन्धी सैंकड़ों यशभरी बातें समाप्त हो गई हैं, भीष्म के पिता शन्तनु की कीत्तियां खतम हो गई हैं, संसार में रघु का यश कम हो गया है और राम के विषय में कथा कहानी भी बन्द हो गई है ।

टि० :—यहां भी पूर्व श्लोक की भांति आक्षेप, असम्बन्धातिशयोक्ति, अत्युक्ति, प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार हैं तथा व्यतिरेक अलङ्कार ध्वनि है जिन से कविनिष्ठ राजविषयक रतिभाव पुष्ट हो रहा है ।

लोलन्मौक्तिकवल्लि वेल्लदलकं वाचालकाञ्चीगुणं
चञ्चत्काञ्चनकङ्कणं च गिरिजा जातोत्सवा नृत्यतु ।
त्वत्कीर्त्तिश्रवणोन्मुखेन विलसत्कल्लोलकोलाहला
यन्मुक्ता मुकुटान्मृगाङ्कशकलोत्तंसेन मन्दाकिनी ॥३२॥

झूलते हुए मोतियों की लड़ियों, लहराती हुई लटों, बजती हुई करधनी और हिलते हुए सोने के कंगन से युक्त होकर पार्वती जी उत्सव मनाते हुए नाचें क्योंकि तुम्हारी कीर्त्ति को सुनने में तत्पर

चन्द्रकला के आभूषण को धारण करने वाले शिव जी ने शोभायमान तरङ्गों से कोलाहल करती हुई (अत एव सुनने में विघ्न करने वाली) गंगा को अपने मुकुट से उतार कर नीचे छोड़ दिया है।

टि० :—यहां पर पार्वती के नर्तन कार्य का कारण शिव जी द्वारा गंगापरित्याग बताया गया है। अपनी सौत गंगा के तिरस्कृत किये जाने पर पार्वती का हर्षित होकर नाचना स्वाभाविक है। गंगापरित्याग कार्य का कारण गंगा की लहरों का शोर करना बताया गया है। इस प्रकार यहां काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। क्, व्, ल् आदि वर्णों की बहुत बार आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास है।

कर्पूरैरिव पारदैरिव सुधास्यन्दैरिवाप्लाविते*
जाते† हन्त दिवापि देव ककुभां गर्भे‡ भवत्कीर्तिभिः।
धृत्वाङ्गे कवचं निबध्य शरधिं कृत्वा पुरो माधवं
कामः कैरवबान्धवोदयधिया धुन्वन्धनुर्धावति ॥३३॥

हे महाराज, जब आपकी शुभ्रवर्ण वाली कीर्त्तियों से भरे दिशाओं के अन्तराल ऐसे लगने लगे कि मानों कपूर, पारे और अमृत बिन्दुओं से भर गये हों तो चन्द्रमा के निकलने की भ्रम बुद्धि के कारण कामदेव शरीर पर कवच धारण करके तरकश को बांध कर धनुष को हिलाता हुआ अपने मित्र वसन्त को साथ ले कर दौड़ पड़ा।

टि० :—यहां यशोव्यापन क्रिया पर आप्लावन क्रिया का आरोप है अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। शुभ्र यश के प्रसार के कारण

*स्नाविते (ज)। †संजातेद्य (ज)। ‡गर्ते (ज)।

चमकती दिशाओं में कामदेव को चन्द्रोदय की भ्रान्ति हो गई है। अतस्मिन् तद्बुद्धि होने से यहां भ्रान्तिमान् अलङ्कार है। वि, र्, ध्, क् आदि वर्णों की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास है।

अधिकंसमाप्तसमरः प्रथितो भुवनेषु गोपनरसोत्कः।
भाति सदानवविजयं कुर्वन्कृष्णस्तवायमसिः ॥३४॥

(राज पक्ष) पूर्णतया युद्ध को समाप्त कर देने वाला, सारे लोकों में विख्यात, रक्षाकार्य के लिए उत्कण्ठित तुम्हारा यह काला कृष्णरूप खड्ग हमेशा नयी नयी विजय प्राप्त करता हुआ शोभित हो रहा है। (कृष्ण पक्ष) कंस सम्बन्धी युद्ध को प्राप्त करने वाले गोपजनों के प्रति प्रेम से भरे हुए, दानवों के ऊपर विजय प्राप्त करते हुए कृष्ण भगवान् शोभित हो रहे हैं।

टि० :—यहां स् क् आदि वर्णों की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास है। खड्ग पर कृष्ण का आरोप होने से रूपकालङ्कार है। श्लिष्टपदों से अनेक अर्थों का कथन होने से श्लेषालङ्कार है। इन सभी अलङ्कारों से भावध्वनि पुष्ट हो रही है।

राकाकान्तकलाङ्कुराङ्कितजरत्किशो (?) निशीथक्षणे
गायन्तीषु सुराङ्गनासु भवतः कैलासकुञ्जे यशः।
निष्पीड्य प्रियमौलिचन्द्रकलिकां कन्दर्पकेलिक्लम-
स्वापं दूरयितुं दृशोर्गिरिजया दत्ताः सुधाबिन्दवः ॥३५॥

निशापति चन्द्रमा की कोमल कला से चिह्नित पुराने ढाक के

वृक्षों से युक्त कैलाश के लतागृह में अर्धरात्रि के समय जब देवाङ्गनायें आप का यश गा रही थीं तब पार्वती कामक्रीड़ा की थकान से उत्पन्न नींद को दूर करने के लिए प्रिय के मस्तक पर के चन्द्र की कलिका को निचोड़ कर अमृतबिन्दु अपनी आंखों पर छिड़कने लगीं।

टि० :—अभिप्राय यह है कि पार्वती जी हर्ष का यशोगान सुनने को इतनी अधिक लालायित हैं कि रात्रि के समय नींद के झौकों को दूर करने के लिए चन्द्रकला के निपीडन से प्राप्त जल बिन्दु आँखों पर छिड़क रही हैं। चन्द्रमा को निचोड़ने से जल निकलता है यह बात कविसमयख्यात है। हर्ष के यशोगान को सुनने के लिए निद्रा दूर करने के हेतु चन्द्रनिपीडन कार्य किया गया है अतः यहां हेतु अलङ्कार है।

(हेतोर्हेतुमता सार्धं वर्णनं हेतुरुच्यते कुवलयानन्द १६७)
र् क् वर्ण की असकृत् आवृत्ति से वृत्त्यनुप्रास है। रस शृङ्गार है।

किं तान्तिः किमनिर्वृतिः किमधृतिर्वाग्देवि मुञ्जे गते
किं शून्यासि किमाकुलासि किमितिक्लान्तासि कोऽयं क्रमः।
एवं विद्धि तमेव सास्य* हि मतिः सा विश्रुतिः सा द्युतिः
स त्यागः स नयः स सूक्तिषु रसस्ताः संमताः संपदः ॥३६॥

हे सरस्वती, इस संसार से मुञ्ज के चले जाने पर तुम्हें यह घुटन यह अशान्ति यह अधीरता क्यों है ? यह कैसा ढंग है ? तुम

---

*तमेवमस्य।

खोई खोई, घबराई, मुरझाई क्यों हो ? इस (महाराज हर्ष) को वही समझो। इस की वैसी ही बुद्धि है, वैसी ही प्रसिद्धि है, वैसी ही कान्ति, वैसा ही त्याग, वैसी ही नीति, वैसा ही सुन्दर उक्तियां सुनने में अनुराग और वैसी ही सम्मानप्राप्त गुणसंपत्तियां हैं।

टि० :—यहां हर्ष के ऊपर मुञ्ज का आरोप होने से रूपकालङ्कार है। हर्ष के मुञ्जसदृश गुणों को देख कर मुञ्ज के गुणों का स्मरण होने से स्मरणालङ्कार ध्वनि भी है। द्युति, त्याग, नीति आदि लोकोत्तर गुणों के कारण यहां अत्युक्ति अलंकार भी है। इन सबसे भावध्वनि पुष्ट हो रही है।

कस्मादम्ब बिलम्बसे कुरु कृपां केनापि रूपेण मे
जिह्वाग्रे वस संनिधेहि हृदये वाग्देवि तुभ्यं नमः।
यन्मे साहसिकस्य भूपचरितव्यावर्णने सादरं
सप्रेमप्रसरं सकौतुकरसं सोल्लासमास्ते मनः ॥३७॥

हे सरस्वती ! मैं आप को नमस्कार करता हूं। हे मां ! कृपा करो, देर क्यों करती हो ? किसी भी रूप में मेरी जिह्वा के अग्रभाग में आ रहो, मेरे हृदय में स्थान बनाओ क्योंकि मुझ साहसी का मन आदर सहित, प्रेमविस्तार सहित, उत्सुकता और हर्ष के साथ महाराज (हर्ष) के कार्यों का वर्णन करने में लगा है।

टि० :—यहां पर पूर्वार्ध वाक्यार्थ के लिए उत्तरार्ध वाक्यार्थ हेतु के रूप में रखा जाने के कारण काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। राजा की सर्वगुणसम्पन्नता व्यंग्य है क्योंकि इसी कारण कवि का मन

गुण वर्णन के लिए उल्लसित है। देवविषयक रति की पुष्टि होने से भावध्वनि है।

नाके मुग्धमधुव्रतप्रणयिनीहुंकारहारिस्वनै-
श्चारु त्वच्चरितं यदैव चतुरैरुच्चारितं चारणैः।
कान्तं* मौक्तिकदामनद्धचिकुरस्वःसुन्दरीणां पुरः
प्राप्तो देव तदैव सूत्रितशरासारः ससारः† स्मरः ॥३८॥

स्वर्ग में चतुर चारणों ने भ्रमरों की भोली प्रयसी भ्रमरियों की गूंज के समान मनोहर कण्ठस्वरों से ज्यों ही आप की सुन्दर जीवनकथा का गायन किया त्यों ही हे महाराज! मोतियों की लड़ियों से बँधे केशों वाली स्वर्ग-सुन्दरियों के सामने लगातार बाणों की वर्षा करता हुआ बलवान् कामदेव शान से पहुँच गया।

टि० :—म् ध् ह्, च् त् आदि वर्णों की असकृत् आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास और "सारः' इस वर्ण समुदाय की आवृत्ति होने से श्रुत्यनुप्रास अलङ्कार हैं। हुंकारहारिस्वनैः में इव का लोप होने से वाचकलुप्तोपमा है। हेतु और कार्य का एक साथ ही वर्णन होने से अक्रमातिशयोक्ति है। इन सब से यहां भावध्वनि की पुष्टि हो रही है।

---

*कान्ता (ज)। †ससारस्मरः (ज)।

श्रीखण्डद्रवनिर्झरन्ति हृदये पीयूषकल्लोलिनी-
निःष्यन्दन्ति तनौ रसायनरसस्यन्दन्ति कर्णान्तिके* ।
नासीरप्रसरन्ति दिक्परिसरे भूमण्डले मौक्तिक-
प्रस्तारन्ति सुधाकरन्ति गगनोत्सङ्गे भवत्कीर्तयः ।।३९।।

आप की कीर्त्तियां हृदय में चन्दन रस का झरना सा बहाती हैं, शरीर में अमृत की नदियों का प्रवाह सा बहा देती हैं, कानों में रसायनरस का द्रव सा टपका देती हैं, दिशाओं के किनारों में सेना का अग्रभाग सा फैला देती हैं और भूमण्डल में मोती से बिखेर देती हैं।

टि० :—यहा कीर्त्तयः इस एक कर्त्तृ कारक के साथ बहुत सी क्रियाओं का सम्बन्ध होने से कारकदीपक अलङ्कार है। निर्झरन्ति आदि में निर्झरा इव आचरन्त्यः इस विग्रह के कारण वाचकधर्मलुप्तोपमा अलङ्कार हैं। भावध्वनि।

किं बालेन मृणालतन्तुमलिनच्छायेन खण्डेन्दुना
निःशङ्कोऽद्य वृषाङ्क शेखरपदे राकाशशाङ्कं कुरु ।
देवस्यास्य हि केतकोदरदलच्छायैर्यशोभिर्निशि
व्योम्नः सीम्नि च मण्डले च ककुभां व्यस्तं समस्तं तमः ।।४०

हे शिव जी ! कमलनाल के तन्तु के समान मैली चमक वाले बालचन्द्र की कला से क्या लाभ ? आज निश्चिन्त होकर पूर्णिमा के चांद को अपने मुकुट में लगाये रखो क्योंकि इस महाराज के केवड़े

*कर्णान्तरे (ज)।

के फूल की भीतरी पंखुड़ी की कान्ति वाले यशों ने रात्रि में आकाश की सीमा में तथा दिग्मण्डल में समस्त अन्धकार दूर कर दिया है।

टि० :—अभिप्राय यह है कि चन्द्रमा की एक कला को तो शिव जी धारण करते हैं, बाकी कलाओं से संसार प्रकाशित होता है। चूंकि अब महाराज हर्ष के यशश्चन्द्र ने दिग्मण्डल को प्रकाशित करके सारे अन्धकार को दूर कर दिया है और पूर्णिमा के चाँद की संसार के लिए कोई उपयोगिता नहीं रही है अतः कवि शिव जी को सलाह दे रहे हैं कि वह चन्द्रकला के स्थान में पूर्णचन्द्र को ही अपने मस्तक पर धारण कर ले। यहां पूर्वार्ध के वाक्यार्थ के लिए उत्तरार्ध का वाक्यार्थ हेतु रूप में प्रयुक्त हुआ है इस कारण काव्य-लिङ्ग अलङ्कार है। अस्तं की सकृत् आवृत्ति होने से छेकानुप्रास तथा ल्, म् आदि वर्णों की असकृत् आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास है। भावध्वनि।

नो चैत्रः सहकारकुड्मलकुलैःक्लृप्तं न तत्कार्मुकं
नामी क्रूरशिलीमुखाः शितमुखा* नो कोकिलापञ्चमः† ।
नैवोद्दामकरः शशी न मकरः केतुस्थितो नो रति-
स्तत्रापि त्वमहो समस्तरमणीमानव्यधो मन्मथः ॥४१॥

न तो चैत्रमास है, न ही आम्रकलिकाओं के समूह से बना वह लोकविजयी धनुष है, न ही वे नुकीले क्रूर बाण हैं, न ही कोयल का पञ्चम स्वर है, न ही उद्दीपक किरणों से युक्त चन्द्रमा

---

*शतमुखाः (ज)। †नो पञ्चमः पञ्चमः (ज)

है, न ही पताका में मकर विद्यमान है, न ही साथ में रति है, फिर भी (बिना किसी की सहायता के) तुम सभी रमणियों के मान को भंग करने वाले कामदेव हो।

टि० :—यहां कारणसामग्री के अभाव में कामोद्दीपन कार्य हो रहा है अतः विभावना अलङ्कार है। कामदेव को तो सुन्दरियों का मान भंग करने के लिए चैत्रादि कामोद्दीपक साधनों की आवश्यकता होती है किन्तु राजा हर्ष इन साधनों के बिना ही रमणियों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। इस कारण राजा का सामर्थ्य कामदेव से भी अधिक है। इस रूप में व्यतिरेकालङ्कार-ध्वनि की भी प्रतीति हो रही है। भावध्वनि।

तन्मूर्तं भुवने मुहूर्तममृतं मन्ये भृशं* वासरं
सारं वेद्मि† तदेव सैव च गुणैरायामिनी यामिनी।
श्रीवासो यशसां पदं सुमनसामप्यास्पदं संपदां
यत्रागच्छति गोचरं नयनयोः काश्मीरमीनध्वजः ॥४२॥

इस संसार में उसी क्षण को मैं मूर्त्तिमान् अमृत मानता हूँ, उसी दिवस को अत्यन्त सारयुक्त समझता हूँ और वही रात्रि गुणों से भरपूर है जिसमें लक्ष्मी के निवास, कीर्त्तियों के स्थान और देवताओं की भी सम्पत्तियों के घर कश्मीर के कामदेव महाराज हर्ष दृष्टिगोचर होते हैं।

टि० :—आयामिनी यामिनी में एक निरर्थक और दूसरे

*मन्यामहे। †विद्मः।

सार्थक पद की आवृत्ति होने से यमकालंकार है मुहूर्त्त उपमेय में अमृत उपमान की सम्भावना होने से वाच्योत्प्रेक्षा है। काश्मीर-मीनध्वज हर्ष का श्रीनिवास आदि के रूप में अनेक प्रकार का वर्णन होने से उल्लेखालङ्कार है। काश्मीरमीनध्वज इस उपमान के द्वारा उपमेयभूत राजा हर्ष का निगीरण होने से रूपकातिशयोक्ति है। राजा के समृद्ध्यतिशय का वर्णन होने से उदात्तालङ्कार है। राजविषयक भावध्वनि।

संजाते जलदात्ययेऽपि फणभृत्पर्यङ्कशय्यातलं
मा मा मुञ्च मुकुन्द कान्तकमलादोःकन्दलालिङ्गितः।
जार्गति स्थितये सतां विरतये येनासतामप्ययं
संनद्धो गुणिमौलिमण्डनमणिर्भूमण्डलाखण्डलः ॥४३॥

हे विष्णु भगवान्! वर्षा ऋतु के समाप्त हो जाने पर भी आप सुन्दर लक्ष्मी की कोमल भुजाओं के आलिङ्गन में रहते हुए शेषनाग रूपी पलङ्ग की सेज को बिलकुल मत छोड़ो क्योंकि गुणिजनों के सिरों की भूषणमणि और पृथ्वीमण्डल के इन्द्र यह राजा हर्ष भी सज्जनों की रक्षा और दुष्टों के नाश के लिए तैयार होकर जाग रहे हैं।

टि० :—यहां म्, क् आदि वर्णों की आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास तथा भूमण्डलाखण्डलः में वर्णसमूह की सकृत् आवृत्ति होने से छेकानुप्रास है। यहां विष्णु के द्वारा शय्या न छोड़ने रूप कार्य का कारण हर्ष का सावधान होकर जागरण बताया गया है अतः काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। जार्गति क्रिया का स्थिति और विरति

इन दो कारकों से सम्बन्ध होने के कारण दीपक है। राजा के ऊपर मण्डनमणि तथा आखण्डल का आरोप होने से मालारूपक है। भावध्वनि।

श्लाघा राघव लाघवं तव गता दुष्यन्त विश्वं तव
म्लानिं याति यशो गता तव तथा पार्थ प्रथाऽपार्थताम्।
जातेऽस्मिन्गुणिबान्धवे नरपतिश्यामाधवे माधवे
कस्याप्यत्र न कर्ण कर्णपदवीं याता भवत्कीर्तयः ॥४४॥

गुणियों के बन्धु इस नृपतिचन्द्र महाराज हर्ष के उत्पन्न हो जाने पर हे राम! तुम्हारी प्रशंसा कम हो गई है, हे दुष्यन्त! तुम्हारा सारा यश मलिन हो गया है और हे अर्जुन! तुम्हारी प्रसिद्धि व्यर्थ हो गई है। हे कर्ण! तुम्हारे यश यहां किसी के भी कानों में नहीं पड़ते।

टि० :—यहां राघव लाघवं में रलयोरभेदः इस नियम से दो भिन्नार्थक सार्थक पदों की आवृत्ति होने से यमकालङ्कार, पार्थ अपार्थ में सार्थक निरर्थक, श्यामाधवे माधवे में निरर्थक सार्थक और कर्ण कर्णपदवी में सार्थक निरर्थक पदों की आवृत्ति होने से यमकालङ्कार हैं। राजा के प्रभावातिशय का वर्णन होने से अत्युक्ति अलङ्कार और राघवादि से यह राजा बढ़ चढ़ कर है इस अर्थ के प्रतीत होने से व्यतिरेकालङ्कार है। भावध्वनि।

ज्ञाता भूरियमम्बुराशिरसना किं नाम नालोचितं
तत्राखण्डलमण्डले मणिपुरे* वार्तापि वृत्तैव नः ।
कान्तौ कीर्तिरतौ नये परिचये काव्यक्रमप्रक्रमे†
यावत्क्वापि कदापि कोऽपि भवतः स्पर्धापरो नापरः ॥४५॥

समुद्ररूपी मेखला से युक्त यह पृथ्वी जान ली है, इसे देख कर क्या नहीं देखा ? वहाँ इन्द्र के राज्य में अमरावती में भी हमारी बात हो चुकी है अर्थात् हम ने सब से पूछ लिया है। सौन्दर्य में, कीर्त्ति के प्रेम में, नीति में, लोकपरिचय में तथा काव्यरचना के कार्य में आप की होड़ करने वाला जहां में कहीं भी कभी भी कोई भी दूसरा नहीं दिखाई दे रहा है।

टि० :—यहां पर पृथिवी की समस्त वस्तुओं के देखने और स्वर्ग के देवों से बात करने रूप असम्बन्ध में सम्बन्ध दिखाने से असम्बन्धातिशयोक्ति है। तुम्हारे साथ होड़ करने वाला कोई नहीं है अत एव तुम्हारा उपमान नहीं है इस प्रकार उपमान न बनने के कारण यहां वाचकोपमानलुप्ता उपमा है। स्पर्धापर सामान्य धर्म है, राजा उपमेय है। भावध्वनि।

एवं‡ त्वामहमर्थये विरमितस्वाध्यायकौतूहलो
ब्रह्माण्डोदरमम्बुजासन पुनर्यत्नेन विस्तारय ।
देवस्यास्य यतो न माति विततं राकेन्दुरोचिर्लता-
लोलोन्मीलितकैरवोदरदलद्धौतावदातं यशः ॥४६॥

*फणिपुरि। †विक्रमे। ‡एष।

हे कमलासन ब्रह्मदेव ! मैं आप से इस रूप में प्रार्थना कर रहा हूं कि आप स्वाध्याय (पठनपाठन) में अपनी अभिलाषा छोड़ कर प्रयत्नपूर्वक फिर से इस जगत् के भीतरी भाग को विस्तृत करो। क्योंकि पूर्णिमा के चांद की कोमल किरणों से अनायास खिले हुए श्वेत कमल के मध्यभाग के समान विकसित श्वेत एवं उज्ज्वल और विस्तृत राजयश इसमें समा नहीं रहा है।

टि० :—'कैरवोदरदलद्धौतावदातम्' में इव का लोप होने से वाचकलुप्ता उपमा है। ब्रह्माण्ड आधार अपने आप में बहुत बड़ा है किन्तु उसकी अपेक्षा आधेय यश को बड़ा बताने के कारण यहां अधिकालङ्कार है। 'विस्तारय' इस उक्ति के समर्थन के लिए 'यशो न माति' इस कारण के दिये जाने के कारण यहां काव्यलिङ्ग भी है। भावध्वनि।

उर्वीं मौर्वीकिणभृति भवद्दोष्णि बिभ्रत्यशेषां
शान्तक्लान्तिः किमपि कुरुते नर्मणा कर्म कूर्मः।
कृत्वा वेलापुलिनलवलीपल्लवग्रास* गोष्ठीं
दिङ्मातङ्गाः सममथ सरिन्नाथपाथः पिबन्ति ॥४७॥

धनुष की डोरी के चिह्न से अंकित आप की भुजा ने सम्पूर्ण पृथ्वी को धारण कर लिया है। इस कारण कूर्मावतार की थकान शान्त हो गई है और वह परिहासपूर्वक कुछ दिल्लगी के काम कर रहा है। समुद्रतट के बालुकामय प्रदेश में लवली लता के पत्तों का सहभोज करके सभी दिग्गज इकट्ठे होकर समुद्र का पानी पी रहे हैं।

*पल्लवावस (ज)

टि० :—यहां कछुवे की क्लान्तिनिवृत्ति में और दिग्गजों के सहभोज तथा पानगोष्ठी में राजा की भुजा द्वारा पृथिवी का धारण किया जाना कारण है अतः काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। कूर्मावतार और दिग्गजों के पराक्रम से राजा का भुजबल अधिक है. इस अर्थ की प्रतीति से व्यतिरेकालङ्कार ध्वनि है। म्, ल् आदि की असकृत् आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास है। भावध्वनि।

किं मौनं ननु मेनके किमु शुचिं* धत्से शचि क्षामता
केयं वाचि घृताचि साचि किमिदं रम्भे मुखाम्भोरुहम्।
याते त्वच्चरितामृते† श्रुतिपथं गीर्वाणवामभ्रुवा-
मेवं देव खरस्मरज्वरजुषामुक्ताः सखीभिर्गिरः ॥४८॥

हे मेनके! तुम चुप क्यों हो? हे इन्द्राणी! तुम क्यों शोक कर रही हो? हे घृताची अप्सरा! तुम्हारी वाणी में यह कमजोरी कैसी? हे रम्भे! तुम्हारा यह मुख कमल टेढ़ा क्यों? हे महाराज! तुम्हारी जीवन कथा रूपी अमृत के कानों में पड़ने पर देव सुन्दरियों की सखियों ने तीव्र कामज्वर के आनन्द से युक्त हो कर यह वचन कहे।

टि० :—मौन मेन, शुचि शचि, घृताचि साचि में वर्णसमूह की सकृत् आवृत्ति होने से छेकानुप्रास और क्, म्, र् आदि वर्णों की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास अलङ्कार हैं। मेनका के मौन, इन्द्राणी के शोक आदि का कारण हर्ष की कीर्त्ति का श्रवण

*किमशुचं (ज)। †चरितादुभुते (ज)।

बताया जाने से काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। राजा के सौन्दर्य का अद्भुत तथा अतथ्यपूर्ण वर्णन होने से अत्युक्ति अलङ्कार है। सौन्दर्यातिशय का बोध व्यञ्जना से हो रहा है। भावध्वनि।

किं राकेन्दुकरच्छटाभिरुदितं किं मौक्तिकैरुद्गतं
किं मल्लीमुकुलैः स्मितं विकसितं किं मालतीकुड्मलैः।
किं रूढं रमणीविलासहसितैः किं तत्र कीर्णं सुधा-
स्यन्दैर्यत्र जगत्त्रयैकतिलक भ्रान्तं भवत्कीर्तिभिः ॥४९॥

हे तीनों लोकों के तिलक ! जहां आपकी कीर्त्तियों ने भ्रमण किया है वहां क्या पूर्णिमा के चन्द्रमा की किरणों की छटा उदित हो गई है ? क्या मोती निकल आये हैं ? क्या मल्ली की कलियां खिल गई हैं ? क्या मालती के फूल विकसित हो गये हैं ? क्या रमणियों की विलास भरी मुसकानें उदित हुई हैं या क्या वहां अमृतबिन्दु बिखर गये हैं ?

टि० :—यहां महाराजा हर्ष के यश का प्रसार प्रकृत विषय है जिस में पूर्णिमा के चन्द्रमा की किरणों की छटा आदि अनेक अप्रकृत विषयों की उद्भावना की गई है तथा किसी निश्चित ज्ञान की प्रतीति नहीं हुई अतः शुद्ध सन्देह अलङ्कार है। भावध्वनि।

नोद्दामानि दिशां मुखानि न घनाभोगा नभोमण्डली
नैवोत्तालतलं* रसातलमियं पृथ्वी न पृथ्वी पुनः।
एवं देव कथं नु कुञ्जररदच्छेदावदातास्तव
स्वैरं यान्ति च मान्ति च श्रुतिसुधाधारामुचः कीर्तयः ॥५०

*नैवोत्तानतलम्।

दिशाओं के भाग असीमित नहीं हैं, आकाशमण्डल का विस्तार बहुत नहीं है, रसातल की सतह बहुत लम्बी नहीं, पृथ्वी भी विस्तृत नहीं है। हे महाराज, ऐसा होने पर भी हाथीदांत के टुकड़े के समान उज्ज्वल कानों में अमृत धारा को बहाने वाली तुम्हारी कीर्त्तियां कैसे इनमें स्वच्छन्द विहार करती हैं तथा कैसे समा पाती हैं ?

टि० :—यहां ऐसे संकीर्ण आधारों का वर्णन है जिन में यश न फैल सकता है और न ही समा सकता है। यह सब आधार यश के न फैलने में कारण हैं। इन कारणों के होते हुए भी यश का न फैलना रूप कार्य नहीं हो रहा है इस कारण विशेषोक्ति अलङ्कार है। यशोविस्तार का कारण अधिकरणों की विशालता होती है। इस विशालता रूप कारण के बिना यशोविस्तार रूप कार्य हो रहा है अतः यहां विभावना है। परिमाण में अधिक होने से महाराज हर्ष का यश उक्त आधारों में समाने योग्य नहीं है। इस अर्थ की प्रतीति व्यञ्जना से होने के कारण यहां अधिकालङ्कार ध्वनि है। रदच्छेदावदाताः में इव का लोप होने से वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। यान्ति मान्ति का कीर्त्तयः कारक से सम्बन्ध होने के कारण कारकदीपक अलङ्कार है। कीर्त्तियों का अद्भुत वर्णन होने से अत्युक्ति अलङ्कार है। भावध्वनि।

यो वैरिष्वनलो नलो वसुमतीदीपो दिलीपोऽथ यो
यो मानेन पृथुः पृथुर्जगति यो निर्लाघवो राघवः।
यः कीर्त्तौ भरतो* रतो नृपगुणैर्यः शंतनुः शंतनुः
संजाते त्वयि कस्य न क्षितिपते सर्वेऽपि ते विस्मृताः ॥५१॥

---

*यत्कीर्तौ भवतो।

जो राजा नल शत्रुओं के लिए अग्नि रूप थे, जो राजा दिलीप पृथ्वी के दीपक थे, जो राजा पृथु संसार में प्रतिष्ठा के कारण महान् थे, जो रघुनन्दन इस संसार में गरिमापूर्ण थे, जो भरत कीर्त्ति के अर्जन में संलग्न थे, जो राजा शन्तनु राजोचित गुणों से युक्त कल्याणमय शरीर वाले थे, वे सबके सब, हे राजन् ! तुम्हारे उत्पन्न होने पर किसने नहीं भुला दिये हैं ?

टि० :—यहां पृथु पृथु, शन्तनु शन्तनु इन भिन्नार्थक शब्दों की आवृत्ति होने से तथा अनलो नलो, भरतो रतो में एक निरर्थक तथा एक सार्थक पद की आवृत्ति होने से यमकालङ्कार है। दीपो दिलीपो में वर्णसमूह की सकृत् आवृत्ति होने से छेकानुप्रास है। नलादि राजाओं की अपेक्षा राजा हर्ष का प्रभाव अधिक है इस अर्थ की प्रतीति व्यञ्जना से होने के कारण यहां व्यतिरेकालङ्कार ध्वनि है। नल के ऊपर अनल का तथा दिलीप के ऊपर दीपक का आरोप होने से रूपकालङ्कार है। भावध्वनि।

अपारपुलिनस्थलीभुवि हिमालये मालये
निकामविकटोन्नते* दुरधिरोहणे रोहणे।
महत्यमरभूधरे गहनकंदरे† मन्दरे
भ्रमन्ति न पतन्त्यहो परिणता भवत्कीर्तयः ॥५२॥

समुद्र की रेतीली भूमि वाली पृथ्वी पर, सुन्दरता के आगार हिमालय पर, अत्यन्त भयंकर ऊंचे तथा चढ़ने में कठिन पर्वत पर,

*निकामनिकटे तटे। †गगनकन्दरे।

विशाल अमरकण्टक पर्वत पर गहरी गुफाओं से युक्त मन्दराचल पर तुम्हारी बूढ़ी कीर्त्तियाँ घूम रही हैं, वे गिरती नहीं, यह बड़े आश्चर्य की बात है !

टि० :—यहां मालये मालये, रोहणे रोहणे, दरे दरे में यमक अलङ्कार है। कीर्त्तियां बूढ़ी हैं परन्तु पहाड़ों पर घूमते हुए भी गिरती नहीं, इस विरोध का परिहार यह है कि कीर्त्तियां अशरीरी होने के कारण गिरती नहीं हैं किन्तु फैल सकती हैं। यहां जड़ कीर्त्तियों के ऊपर चेतन नायिकाओं के व्यवहार का आरोप होने से समासोक्ति अलङ्कार है। भावध्वनि।

तात्पर्यं कमलासने विरचितं गौरीहितैः पालित।
त्रैलोक्याद्भुतकृत्सदानवजये दोर्विक्रमो दर्शितः।
एकेनैव कृतं तु देव भवता तत्रापि ते न स्मयो*
यद्वेधाश्च पुरान्तकश्च कमलाकान्तश्च देवोऽकरोत्† ॥५३॥

ब्रह्मा ने कमलासन में अपनी अभिलाषा रखी है और तुमने लक्ष्मी के दान में अपनी रुचि बनाई है। शिव जी ने प्रेम से पार्वती का पालन किया है और तुमने अपने उद्योगों से पृथ्वी का पालन किया है। तीनों लोकों में आश्चर्य जनक काम करने वाले उस विष्णु भगवान् ने दानवों की जय में भुजाओं का पराक्रम दिखाया है और तुम ने सदा तीनों लोकों में आश्चर्यकारी नयी नयी विजयों में अपना भुजबल दिखाया है। हे महाराज ! आपने अकेले ही वह

---

*तन्नाम तेपि त्रयो। †अन्तिम तीन अक्षर लुप्त।

सब कर दिया है जो ब्रह्मा, शिव तथा लक्ष्मीपति महाराज विष्णु ने किया था। फिर भी आप को अभिमान नहीं है।

टि० :—यहां परिवृत्त्यसह श्लिष्ट पदों से अनेकार्थों का कथन होने से शब्द श्लेष अलङ्कार है। महाराज हर्ष ने अकेले ही तीनों देवताओं के कार्यों को किया है इस कारण उनका सामर्थ्य तीनों से बढ़ चढ़ कर होने से व्यतिरेकालङ्कार है। अभिमान होने की कारणसामग्री उपस्थित होने पर भी अभिमान रूप कार्य नहीं हो रहा है अतः विभावना अलङ्कार है। भावध्वनि।

औदार्यं सधने* नयो गुणिजने लज्जा कुलस्त्रीजने
सत्काव्यं वदने मदो द्विरदने पुंस्कोकिलः कानने।
रोलम्बः कमले नखाङ्करचना कान्ताकपोलस्थले
तन्वी तल्पतले भवानपि विभो भूमण्डले मण्डनम् ॥५४॥

हे महाराज ! धनवान् व्यक्ति में उदारता गुणी व्यक्ति में विनम्रता, कुलीन स्त्रियों में लज्जा, मुख में उत्तम काव्य की चर्चा, हाथी में मद, जंगल में नर कोयल, कमल में भ्रमर, प्रियतमा के गालों पर नखक्षत का निर्माण, शय्या पर तन्वङ्गी और पृथ्वीमण्डल आप आभूषण हैं।

टि० :—यहां प्रकृत और अप्रकृत बहुतों के साथ एक मण्डन धर्म का सम्बन्ध होने से कारकदीपक अलङ्कार है। भावध्वनि।

---

*मदने।

जाता तामरसोदरे भगवतो धातुः कृतार्था स्थिति-
र्युक्तं यद्यचिरात्करोति जलधौ संस्थां रमावल्लभः ।
सर्वत्रैव विभो तव प्रसरति प्रौढे प्रतापानले
धत्ते सोऽपि पिनाकिनः सफलतां मौलीन्दुरेखाङ्कुरः ॥५५

हे व्यापक प्रभाव वाले राजन् ! आप की प्रचण्ड प्रतापाग्नि के सब ओर फैल जाने पर भगवान् ब्रह्मा की कमल के मध्यभाग में स्थिति सफल हो गई है, यह भी ठीक ही है जो अभी लक्ष्मीपति विष्णु समुद्र में निवास कर रहे हैं। शिव जी के मस्तक पर रहने वाली वह कोमल चन्द्रकला भी सफल हो गई है।

टि० :—अभिप्राय यह है कि चारों ओर दाहक प्रतापाग्नि के फैल जाने पर उसकी गर्मी से बचने की समस्या हो गई है। इस संकट के अवसर पर ब्रह्मा का बचाव उनके कमल ने कर दिया है, विष्णु समुद्र के पानी में रहने के कारण बच गये हैं और शिवजी की रक्षा उनकी शीतल चन्द्रकला ने कर दी है।

प्रौढ़ प्रतापानल का प्रसार ब्रह्मा के कमल के आसन में बैठने, विष्णु के क्षीरसागर में शयन करने और शिव जी के चन्द्रकला को धारण करने की सफलता में कारण है (क्योंकि यह सभी वस्तुएं शीतल होती हैं। अतः प्रतापानल से उत्पन्न प्रचण्ड गर्मी को दूर करके इन्होंने अपनी उपयोगिता सिद्ध कर दी है) अतः यहां काव्य-लिङ्ग अलङ्कार है। भावध्वनि।

कण्ठान्तः क्वणितं दिवाकरकरक्लान्त्या रजोविप्लवै-
स्तन्नेत्राञ्चलकुञ्चनं* शितकुशप्रान्तक्षतैः सीत्कृतिः ।
श्वासोर्मिप्रभवो वनेचरभिया त्वद्वैरिवामभ्रु वा-
मेवं देव मरोस्तटेऽपि† सुरतक्रीडानुरूपः क्रमः ।।५६।।

सूर्य की किरणों से उत्पन्न बेचैनी के कारण गले से निकलती हुई अव्यक्त आवाज़, धूलि के उपद्रवों के कारण वस्त्र के अग्रभाग से नेत्रों का ढकना, कुशा के तीव्र अग्रभागों से उत्पन्न जख़्मों के कारण सी सी की आवाज़, जंगली प्राणियों के भय के कारण श्वास तरंगों का उत्पन्न होना, इस प्रकार, हे महाराज ! आप की शत्रुनारियों का मरुस्थल के किनारे पर भी सम्भोगलीलोचित कार्यक्रम चल रहा है ।

टि० :—अभिप्राय यह है कि महाराज हर्ष के विजय के अभियान के कारण शत्रुनारियों में भगदड़ मच गई है । रेगिस्तान में भागती हुई वे स्त्रियां नाना कष्ट भोग रही हैं । धूप की उग्रता को न सह पाने के कारण गले से उहूँ इहीं जैसी आवाज़ निकाल रही हैं । जब आंखों में धूल भरने लगती है तो वे कपड़े को आंखों पर डाल लेती हैं, पैरों में कुशा चुभने के कारण सी सी की ध्वनि कर रही हैं और जंगली जानवरों के डर से जल्दी जल्दी सांस ले रही हैं । सम्भोगावस्था में भी गले से अव्यक्त आवाज, लज्जा के कारण आंखों पर कपड़ा डालना, वेदना के कारण सी सी की आवाज, परिश्रम से सांस का जोर जोर से चलना यह सभी क्रियायें होती हैं । यहां सुरत-

*कुंचितं । †सरो ।

क्रीडा और मरुस्थल इन दोनों पक्षों में उक्त क्रियाओं के समान रूप से संगत होने तथा पदों के परिवृत्तिसह होने से अर्थश्लेष है। भावध्वनि।

संदिष्टं वसुधासुधाकर शचीकान्तेन मुञ्चोद्यमं
देव त्वं प्रबलप्रतापदहनोद्रेकाय बद्धाञ्जलि।
एते मानुभवन्तु नाकतरुणी*कर्णावतंसोचितः
क्लान्तिं नन्दनकन्दलीषु कलितव्यापल्लवाः पल्लवाः ॥५७॥

इन्द्र ने हाथ जोड़ कर यह सन्देश भेजा है—हे पृथ्वी के चन्द्र महाराज हर्ष, आप प्रचण्ड प्रतापाग्नि को दहकाने के लिए अपना उद्योग छोड़ दो ताकि स्वर्ग की सुन्दरियों के कर्णाभूषण बनने योग्य नन्दनवन की कमलों की पंखुड़ियां कुछ संकटग्रस्त होकर मुरझा न जायें।

टि० :—यहां पर व्, प्, र्, द्, क् आदि वर्णों की असकृत् आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास और सुधा सुधा, पल्लवाः पल्लवाः में यमकालङ्कार है। प्रताप के ऊपर अनल का आरोप होने से रूपक है। प्रबल प्रतापानल स्वर्ग की लताओं के मुरझाने में कारण नहीं है फिर भी उसे कारण बताया है इस कारण असम्बन्ध में सम्बन्ध होने से असम्बन्धातिशयोक्ति है। भावध्वनि।

---

*तटिनी।

शक्तिं मानसतीव्रतापदहने* धत्ते गलत्संयमा
कामाशां प्रकटीकरोति न सतां सर्वत्रपापासनात् ।
प्रेम प्रौढमनारतं वितनुते वृद्धेति शुद्धेति च
प्रख्यातापि महीमनोभव भवत्कीर्तिर्विचित्राः स्त्रियः ॥५८॥

विरोध पक्ष—हे पृथ्वी के [ऊपर उत्पन्न] कामदेव रूपी राजन् ! आपकी कीर्त्ति रूपी वधू 'यह बूढ़ी है और पवित्र, सदाचारिणी है' इस रूप में प्रसिद्ध होती हुई भी अपने मनोनिग्रह को तोड़ कर लोगों के हृदय में तीव्र काम की अग्नि को दहकाने की शक्ति रखती है। अपनी सारी लज्जा को छोड़ देने के कारण क्या सज्जनों की भी सम्भोगाभिलाषा को उत्पन्न नहीं करती है ? अपितु करती ही है। लोगों की बढ़ी हुई अनुरक्ति को और अधिक बढ़ाती है [ऐसा हो भी क्यों नहीं ?] नारियां विचित्र हुआ करती हैं।

परिहारपक्ष -हे पृथ्वी के कामदेव के समान राजन् ! आप की बढ़ी हुई और निर्दोष कीर्त्ति देश काल की सीमाओं को लांघ कर शत्रुओं के हृदयों के भीतर ईर्ष्याजन्य अग्नि को धधकाने में समर्थ है। सभी स्थानों में पापों का नाश करने से सज्जनों की किस आशा को प्रकट नहीं करती ? अर्थात् तुम्हारी कीर्त्ति को जान कर सज्जन तरह तरह की आशायें बांधते हैं। यह कीर्त्ति आप के प्रति बढ़े हुए प्रजा के प्रेम का अनवरत रूप में विस्तार करती है।

टि० :—यहां राजा के ऊपर कामदेव का और कीर्त्ति के ऊपर नायिका का आरोप होने से एकदेशविवर्त्ति रूपक है। सर्वत्रपापा-

*हनने ।

सनात् का सर्वस्यास्त्रपाया अपासनात् और सर्वत्र पापस्यासनात् इस रूप में विग्रह होने से सभंग श्लेष, मानसतीव्रतापदहने में अभंग श्लेष, अपि शब्द के प्रयोग के कारण श्लेषानुप्राणित विरोधाभास अलङ्कार है। भावध्वनि।

रूपं यन्मदने द्युतिः शशिनि या गम्भीरता याम्बुधौ
यो मेरौ गरिमास्ति या कमलिनीकान्ते प्रतापोन्नतिः।
यो लक्ष्मीरमणेऽपि विक्रमगुणस्तत्सर्वमेकत्र चे-
द्द्रष्टुं वाञ्छसि दृश्यतामयमये* देवस्त्रिलोकीमणिः ॥५६॥

कामदेव में जो सौन्दर्य है, चन्द्रमा में जो चमक है, सागर में जो गाम्भीर्य है, मेरु पर्वत में जो गौरव है, सूर्य में जो प्रताप का उत्कर्ष है, विष्णु में जो पराक्रम का वैशिष्ट्य है, उसको यदि तुम एक जगह देखना चाहते हो तो तीनों लोकों की मणि इस राजा को देख लो।

टि० :—जो कामदेव आदि में वर्णित रूप आदि गुण हैं वह समवाय सम्बन्ध से तत्तत्पदार्थों में ही रहते हैं उनकी अपने से भिन्न वस्तु राजा के अन्दर स्थिति नहीं हो सकती किन्तु इस असम्भव वस्तुसम्बन्ध को अर्थात् उन २ पदार्थों के धर्मों के राजा के अन्दर संक्रान्त होने को यहां दिखाया है। यह राजा कामदेव के समान सुन्दर, चन्द्रमा के समान आह्लादक, समुद्र के समान गम्भीर, मेरु के समान गौरवशाली, सूर्य के समान तेजस्वी और विष्णु के समान पराक्रमी है—इन बहुत सी उपमाओं की भी पर्यवसान में प्रतीति हो

*अयमितो।

रही है। इस कारण यहां मालानिदर्शना है। कामदेव आदि में से प्रत्येक के भीतर सौन्दर्य आदि एक ही गुण है किन्तु इस राजा में यह सारे गुण विद्यमान हैं इस अर्थ की व्यञ्जना से प्रतीति होने के कारण यहां व्यतिरेकालङ्कार ध्वनि है। इन सबसे राजविषयक भावध्वनि पुष्ट हो रही है।

स ख्यातो जगति त्रिविक्रम इति त्वद्विक्रमा भूरय-
स्तेनैको निहतो बलिर्बलिशतध्वंसी भुजस्तावकः।
तं वैकुण्ठमवैति को न जगतीं जेतुं त्वकुण्ठो भवा-
नस्त्येवं महदन्तरं तव तथा देवस्य दैत्यद्रुहः ॥६०॥

हे राजन् ! वह विष्णु भगवान् त्रिविक्रम—तीन पराक्रमों का काम करने वाले के रूप में प्रसिद्ध हैं किन्तु तुम्हारे पराक्रम अनेक हैं, उन्होंने केवल एक बलि दैत्य को पराजित किया था किन्तु तुम्हारी बाहु सैंकड़ों बलवान् योद्धाओं का विनाश करने वाली है। उनको यह निश्चित रूप से जड़ (वैकुण्ठ) हैं इस रूप में कौन नहीं जानता किन्तु तुम सारे विश्व को जीतने में चुस्त हो इस प्रकार आपमें और दैत्यनाशक विष्णु भगवान् में बहुत बड़ा अन्तर है।

टि० :—भगवान् विष्णु का एक नाम त्रिविक्रम है क्योंकि उन्होंने वामनावतार धारण करके सारे पृथिवी आदि लोकों को तीन पगों को रखकर माप लिया था। यहां त्रिविक्रम (तीन पादनिक्षेप तथा तीन पराक्रम) बलि (बलि नामक दैत्य, शक्तिशाली) वैकुण्ठ (विष्णु, निश्चित रूप से जड़) पदों में श्लेष है। विष्णु की अपेक्षा तुम्हारा पराक्रम अधिक है यह अर्थ आने से व्यतिरेकालङ्कार है।

पहले तीन वाक्यों का अन्तिम वाक्य से समर्थन होने से काव्यलिङ्ग अलङ्कार है (समर्थनीयस्यार्थस्य काव्यलिङ्गं समर्थनम्—कुवलयानन्द १२१) भावध्वनि ।

चक्रे यत्र मदोर्जितार्जुनभुजस्तम्भाहतिं भार्गवो
यत्रासीद्दशकण्ठकण्ठविपिनच्छेदी रघूणां पतिः ।
पार्थेनापि जितः स यत्र गिरिजाकान्तः किराताकृति-
र्गीतः पल्लविताद्भुतैस्तत्र न कैस्तत्रापि दोर्विक्रमः ॥६१॥

जहां परशुराम ने अहङ्कार से उन्मत्त कार्त्तवीर्य सहस्रबाहु अर्जुन की स्तम्भ के समान कठोर भुजाओं पर आघात किया था। रावण के कण्ठरूपी वन को काटने वाले रघुकुल के स्वामी भगवान् राम जहां विराजमान थे। जहां अर्जुन ने भी किरातवेषधारी शिवजी को पराजित किया था। वहां वहां भी तुम्हारे विकसित और अद्भुत पराक्रमों के कारण किन लोगों ने तुम्हारी भुजाओं के बल का गान नहीं किया है ? (सब ने ही किया है) ।

टि० :—यहां दशकण्ठकण्ठ में निरर्थक और सार्थक कण्ठ पद की आवृत्ति से यमकालङ्कार है और कण्ठाटवी में रूपक है। भुज-स्तम्भाहतिम् में भुजाः स्तम्भा इव इस उपमित समास के होने से धर्मवाचकलुप्तोपमा है । परशुराम, दाशरथि राम और अर्जुन ने तो एक २ स्थान पर ही अपना पुरुषार्थ दिखाय था किन्तु आपने इनके सब स्थानों पर शक्ति प्रदर्शन किया है इस अर्थ की प्रतीति होने से व्यतिरेकालङ्कार है, राजा के प्रभावातिशय का वर्णन है। भावध्वनि है ।

राकेन्दोरुदयभ्रमेण मुखतो मुक्त्वा मृणालाङ्कुरं
तान्तिं तत्र वहन्ति हन्त विलसद्भृङ्गा रथाङ्गाङ्गनाः।
किं चोदञ्चितचञ्चुरञ्चति शरच्चन्द्रप्रभा (भ्रान्तितो
हर्षं हन्त) चकोरपंक्तिरमलं यत्रोदितं ते यशः ॥६२॥

हे राजन् ! जहां आपके निर्मल यश का उदय हुआ है वहां पूर्णिमा के चांद के निकलने की भ्रान्ति से [दिन में ही] भौरों से सुशोभित चकवियां कमलदण्ड के छोटे २ टुकड़ों को छोड़कर दुःखी होने लगी हैं। और इसके अतिरिक्त ऊपर उठी चोंच वाली चकोरों की पंक्ति शरत्कालीन चन्द्रमा की चांदनी की भ्रान्ति के कारण प्रसन्नता को प्राप्त कर रही है।

टि० :—दिन का समय है किन्तु राजा हर्ष के यशश्चन्द्र के प्रकाश से चकवों को रात होने का भ्रम हो रहा है और चकोरों ने भी उसे चन्द्रमा की चांदनी समझ लिया है। चक्रवाकदम्पती दिन में मिलते हैं और रात्रि को बिछुड़ जाते हैं और चकोर रात्रि में चन्द्र की चन्द्रिका का पान करते हैं ऐसी कविप्रसिद्धि है। इस कारण यहां यश फैलने पर चक्रवाकाङ्गनाओं का उदास होना और चकोरों का प्रसन्न होना दिखाया है। यहां पर कवि की प्रतिभा से उत्पन्न जो जो नहीं है उसे वह समझ लेने की बुद्धि (अतस्मिंस्तद्बुद्धि) होने से भ्रान्तिमान् अलङ्कार है। र्, द्, म्, त्, न्, च्, ह् इन वर्णों की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास है। मुख और मुक्त्वा में मुख्, मुक् में श्रुत्यनुप्रास है, तान्तिं वहन्ति में न्ति की और चञ्चुरञ्चति में ञ्च् की सकृत् आवृत्ति होने से छेकानुप्रास है। भावध्वनि।

प्रालेयैः स्नपयन्ति कल्पलतिकाः सेकाननेकानथ
श्रीखण्डाम्बुगलज्जलैरविरलैस्तन्वन्ति संतानके ।
सान्द्रै श्चन्द्रमणिद्रवैरपि विभो मन्दारवल्लीमलं*
सिञ्चन्त्यद्य भवत्प्रतापदहनत्रासेन नाकाङ्गनाः ।।६३।।

हे राजन् ! आपकी प्रताप रूपी अग्नि के डर से आज स्वर्ग की सुन्दरियां हिमकणों से कल्पलताओं का सिञ्चन कर रही हैं और चन्दनरस मिश्रित घने जलों के द्वारा लतासमूहों के ऊपर अनेक छिड़कावों को कर रही हैं तथा चन्द्रकान्त मणियों के गाढ़े पानियों से मन्दारलता को खूब खींच रही हैं ।

टि० :—यहां राजा की प्रचण्ड प्रतापाग्नि सेचन क्रिया की हेतु बताई गई है इस कारण काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। प्रतापदहन में रूपक है। नाकाङ्गना इस कारक का स्नपयन्ति तन्वन्ति और सिञ्चन्ति इन अनेक क्रियाओं के साथ सम्बन्ध होने से कारक दीपक है। भावध्वनि ।

यातं रामविरामविक्लवतया दुष्यन्तविश्रान्तिजः
संतापो विगतो† (विलीनमखिलं दुःखं नलाभावजम्)
किं चान्यत्त्वयि देव बिभ्रति महासाम्राज्यलक्ष्मीमिमां
शान्तः शांतनवोऽपि‡ कोऽपि विपुलाभोगो वियोगो भुवः ।।६४

हे महाराज ! आप के विषय में और क्या कहा जाय ? आप

*मले या तले । †विगतोऽपि । ‡नवोऽपि ।

के द्वारा इस बड़े भारी साम्राज्य का वैभव धारण कर लिये जाने पर [लोगों के हृदयों में] राम के देहावसान की विह्वलता समाप्त हो गई है, दुष्यन्त के वियोग से उत्पन्न शोक चला गया है, नल के न रहने से उत्पन्न सारा कष्ट लुप्त हो गया है और बहुत बढ़ा हुआ तथा न बताये जाने योग्य महाराज शन्तनु की मृत्यु से उत्पन्न, इस पृथिवी का वियोगकष्ट शान्त हो गया है।

टि० :—किं चान्यत् इस उक्ति में विधितात्पर्यक निषेधाभास होने से आक्षेपालङ्कार है। रामादि उत्तम राजाओं के वियोग से दुःखी पृथ्वी के शोकनिवारण में राजा हर्ष का साम्राज्यलक्ष्मी को धारण करना कारण है अतः यहां काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। यहां पृथ्वी और राजा हर्ष के ऊपर नायिका और नायक के व्यवहार का आरोप होने से समासोक्ति अलङ्कार है। रामादि के गुणों को हर्ष के गुणों ने भुलवा दिया है इस अर्थ के व्यंग्य होने से व्यतिरेकालङ्कारध्वनि है। भावध्वनि।

किंचित्कुड्मलितैकलोचनपुटं कण्डूं मुहुर्गण्डयो-
र्झम्पाकम्पितकुड्मले कुरबके निर्वाप्य वन्यद्विपैः।
देव स्मेरसरोजसङ्गसुरभि स्वैरं भवद्वैरिणां
पीतं प्राङ्गणवापिकामकरिणीपीतावशेषं पयः ॥६५॥

हे महाराज, एक आंख को कुछ कुछ मींच कर अपनी उछलकूद से कम्पित कलियों वाले आक पर अपने गण्डस्थलों की खुजली मिटा कर जंगली हाथियों ने आप के वैरियों के प्राङ्गणों की

बावलियों में कामुक हथिनियों के द्वारा पीने से बचे हुए तथा खिले कमलों के सम्पर्क से सुगन्धित जल को इच्छानुसार पिया।

टि० :—यहां क्, ल्, र्, स् प् वर्णों की असकृत् आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास है। ण्ड, म्प इन वर्णों की सकृत् आवृत्ति होने से छेकानुप्रास है। हाथियों की स्वाभाविक क्रियाओं का ज्यों का त्यों वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलङ्कार है। हाथियों के द्वारा हथिनियों का जूठा पानी पिया जाना पशुविषयक रति होने से शृङ्गाराभास है और वीररस का अंग बन रहा है। इन सब से भावध्वनि की पुष्टि हो रही है।

कूर्मे धैर्यं शिथिलय धृतिं मुञ्च शेषस्य शेषा-
माशामाशाकरिषु वसुधे देवि मा मा दधीथाः।
शक्तः सप्ताम्बुनिधिपरिखामेखलामप्ययं त्वां
वोढुं मौर्वीकिणपरिचितो भूपतेरस्य बाहुः ॥६६॥

हे पृथ्वी देवी तुम [अपने धारणार्थ] कच्छपावतार पर धीरज मत बांधो, शेषनाग पर सन्तोष करना छोड़ दो, दिग्गजों पर भी अपनी बची खुची आशा मत रखो क्योंकि सात समुद्रों की खाइयों रूपी करधनियों से युक्त भी तुम्हें धारण करने में धनुष की डोरी के घाव से अङ्कित इस राजा की यह भुजा समर्थ है।

टि० :—यहां पर धृति, धैर्य और आशा यह तीनों शब्द एक ही धीरज अर्थ को बताने वाले हैं किन्तु पुनरुक्ति से बचाने के लिये भिन्न २ शब्दों का प्रयोग होने से प्रतिवस्तूपमा है। परिखा मेखला

में रूपकालङ्कार है। कूर्म, शेषनाग और दिग्गज पृथ्वी को धारण करने वाले राजा के बाहु के उपमान हैं। यहां इनकी व्यर्थता का प्रतिपादन होने से प्रतीपालङ्कार है। पृथ्वी रूप एक कारक का शिथिलय, मुञ्च, दधीथाः इन अनेक क्रियाओं के साथ सम्बन्ध होने से कारकदीपक है। राजा की भुजा में पृथ्वी को धारण करने का सामर्थ्य कूर्मादि के प्रति आशा के परित्याग में कारण है अतः यहां काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। भावध्वनि।

कान्तारेषु च काननेषु च सरित्तीरेषु च क्ष्माभृता-
मुत्सङ्गेषु च पत्तनेषु च सरिद्भर्तुस्तटान्तेषु च।
भ्रान्ताः केतकगर्भपल्लवरुचः श्रान्ता इव क्ष्मापते
कान्ते नन्दनकन्दलीपरिसरे रोहन्ति ते कीर्तयः॥६७॥

हे पृथ्वीपति राजन्! निर्जन जंगलों में, सघन वनों में, नदी-तीरों पर, पहाड़ों की अधित्यकाओं (मध्यभागों) में, नगरों में और समुद्र की तटभूमियों में घूम घूम कर थकी सी केतक पुष्प की भीतरी पंखुड़ी के समान कान्ति वाली तुम्हारी कीर्त्तियां सुन्दर नन्दनवन के लताओं से भरे आसपास के प्रदेशों में चढ़ रही हैं।

टि० :—एषु च वर्णसमूह की पाद के मध्य में अनेक बार आवृत्ति होने से श्रुत्यनुप्रास है। एक कीर्त्तिसमूह का अनेक स्थानों पर भ्रमण बताये जाने के कारण यहां पर विशेषालङ्कार है। केतकगर्भपल्लवस्य रुक् इव रुक् यासां ताः (कीर्त्तयः) यह विग्रह होने से उपमापरिकल्पक निदर्शना अलङ्कार है। श्रान्ता इव में उत्प्रेक्षा है। भावध्वनि।

राकेन्दोरुदयः किमेष किमयं गौरीगुरु र्वा गिरिः
क्षीरोदः किमयं किमेष पुरजिल्लीलाविलासोरगः* ।
किं मन्थाद्रिरयं सुधाजलनिधेर्धौतस्तरङ्गैरिति
त्वत्कीर्तौ वसुधापुरन्दर सदा संदेहिनो देहिनः ।।६८।।

हे पृथ्वी के इन्द्र ! क्या यह पूर्णिमा के चांद का आविर्भाव है ? क्या यह पार्वती के पिता हिमालय पर्वत हैं ? क्या यह क्षीर-सागर है ? क्या यह शिव की क्रीड़ा की शोभा बना हुआ श्वेत सर्प है ? क्या यह अमृतसागर की तरङ्गों से धुला हुआ [अत एव श्वेत] मन्दराचल है ? इस प्रकार तुम्हारी कीर्त्तियों के विषय में शरीर-धारियों को हमेशा सन्देह बना रहता है ।

टि० :—किम् इस समूह की असकृत् आवृत्ति होने से वृत्त्यनु-प्रास, गौरी, गुरु गिरि में भी वृत्त्यनुप्रास और संदेहिनो देहिनः में निरर्थक सार्थक पदों की आवृत्ति होने से यमकालङ्कार है। कीर्त्ति में चन्द्रोदय आदि उपमानों का अनिश्चयपूर्ण संशय होने से शुद्ध सन्देह अलङ्कार है। भावध्वनि ।

विलोकनकथापि मे न नलकूबरे न स्मरे
किमन्यदमृतद्युतेरपि न दर्शनं प्रार्थये ।
अयं नयनगोचरं व्रजति चेद् दृशामुत्सवः
समग्ररमणीमनोमधुपमाधवः क्ष्माधवः ।।६९।।

*लीलानिवासोचलः (ज)

नयनों को आनन्दित करने वाला, सभी सुन्दरियों के मनों रूपी भौंरों के लिए चैत्र रूप यह पृथ्वीपति यदि आंखों के सामने आ जाता है तो मेरे लिए न तो कुबेर के पुत्र सुन्दर नलकूबर को देखने की बात है, न कामदेव को। और तो क्या कहूं, मुझे तो चन्द्रमा के दर्शन की भी चाह नहीं रही है।

टि० :—माधव क्षमाधवः में एक निरर्थक और एक सार्थक पद की आवृत्ति होने से यमक अलङ्कार है। नलकूबरादि उपमानों का तिरस्कार होने से यहां प्रतीपालङ्कार है। मनों के ऊपर भ्रमर का आरोप पृथ्वीपति के ऊपर माधव के आरोप का कारण है अतः परम्परित रूपक है। किमन्यत् में निषेधाभास होने से आक्षेपालङ्कार है। भावध्वनि।

कुन्दैः कन्दलितव्यथं विचकिलः कम्पाकुलं* केतकः
सातङ्कं मदनः सदैन्यमलसं मुक्तो† ऽतिमुक्तद्रुमः।
मोक्तुं‡ किन्तु न पारितस्तव रिपुस्त्रीभिः पुरीनिर्गमे
तत्कालं कृतमाधवीपरिणयः सत्केसरः केसरः ॥७०॥

तुम्हारे शत्रुओं की स्त्रियों ने नगर छोड़ते समय कुन्द पादप को बढ़ी हुई पीड़ा के साथ, चमेली को कांपते हुए और व्याकुल हो कर, केतक को डरते डरते, धतूरे के वृक्ष को दीनता के साथ और अतिमुक्त को अलसा कर छोड़ दिया परन्तु वे उसी समय ही माधवी लता से ब्याहे हुए बढ़िया केसर वाले केसर वृक्ष को न छोड़ सकीं।

---

*कम्पाकुलः (ज), †युक्तो (ज), ‡सेक्तुं (ज)

टि० :—कुन्द कन्द, किल कुल में छेकानुप्रास है। मुक्त अतिमुक्त, मत्केसर: केसर: में यमकालङ्कार है। माधवी लता के साथ विवाह का होना केसर के अपरित्याग में कारण है इसलिए काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

तद्युक्तं ननु कुम्भसंभव भवत्प्रज्ञारहस्येन यद्
द्यां च क्ष्मां च तिरोदधन्निरवधिर्विन्ध्योऽपि वन्ध्यःकृतः।
देवस्यास्य शरन्निशाकरकरन्यक्कारपारंगमं
मात्येतत्कथमन्यथा परिणतं द्यावापृथिव्योर्यशः ॥७१॥

हे अगस्त्य मुनि ! यह ठीक ही हुआ जो तुम्हारी तीव्र बुद्धि के रहस्य से द्युलोक और पृथ्वीलोक को छिपाने वाला निस्सीम विन्ध्य पर्वत भी निष्फल कर दिया गया। नहीं तो शरच्चन्द्र की किरणों को तिरस्कृत करके विजय प्राप्त करता हुआ महाराज हर्ष का प्रौढ़ यश द्युलोक और पृथ्वी लोक में कैसे समाता ?

टि० :—इस पद्य में अगस्त्य मुनि और विन्ध्य पर्वत सम्बन्धी उपाख्यान की ओर संकेत है। एक बार विन्ध्य पर्वत को मेरु पर्वत से ईर्ष्या हुई कि उसके ही चारों ओर सूर्य क्यों घूमता है ? उसने सूर्य से प्रार्थना की कि उसे उसके भी चारों ओर घूमना चाहिये किन्तु सूर्य ने उसकी इस मांग को ठुकरा दिया। इस पर क्रुद्ध होकर विन्ध्याचल ने ऊपर की ओर उठना शुरू कर दिया ताकि वह सूर्य के रास्ते को रोक सके। सूर्य के रास्ते के रुक जाने से चारों ओर अन्धेरा छाने लगा। इससे देवताओं और मनुष्यों में आतङ्क छा गया। उन्होंने

विन्ध्याचल के गुरु अगस्त्य मुनि से सहायता मांगी। अगस्त्य मुनि विन्ध्याचल के पास गये। विन्ध्याचल ने झुक कर उन्हें प्रणाम किया। अगस्त्य ने उससे कहा कि मैं दक्षिणदिशा में जा रहा हूँ और जब तक वापिस न आऊं तब तक तुम इसी प्रकार झुके रहो। इसके बाद अगस्त्य मुनि दक्षिण दिशा से वापिस नहीं लौटे अतः विन्ध्याचल को झुके ही रहना पड़ा और उसे मेरु जैसी ऊंचाई न मिल सकी। इस प्रकार अगस्त्य मुनि ने विन्ध्याचल के ऊंचे होने के प्रयत्न को विफल बना दिया।

यहां विन्ध्य और वन्ध्य में वर्णसमूह की सकृत् आवृत्ति होने से छेकानुप्रास और निशाकर कर में निरर्थक और सार्थक पदों की आवृत्ति होने से यमक अलङ्कार है। विन्ध्याचल की निष्फलता यश के द्यावापृथिवी में समा जाने का कारण है अतः काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। राजा का यश द्यावापृथिवी में स्वाभाविक रूप से समा रहा है उसके समाने में अविस्तार से उत्पन्न विन्ध्याचल की विफलता रूप अहेतु की हेतु के रूप में संभावना होने से यहां हेतूत्प्रेक्षा है। भावध्वनि।

> धिक्तं मल्लीकुसुमकलितं केलिकर्णावतंसं
> ध्वंसं सोऽपि व्रजतु विफलो रत्नताटङ्कटङ्कः।
> हे राजानः प्रकृतिसरलैः शांभवैरेव सूक्तै-
> र्युक्तः कर्तुं भवति भवतां केवलं कर्णपूरः ॥७२॥

मल्लिका के फूलों से बने हुए, क्रीड़ा के समय लगाये हुए कर्णाभूषणों को धिक्कार है। वह निष्फल रत्नजटित, कानों की सुन्दर बाली विनाश को प्राप्त हो। हे राजा लोगो! आपको स्वभाव से सरल शम्भु कवि की सूक्तियों से ही अपने कर्णाभूषण बनाने चाहिये अथवा अपने कानों को इन सूक्तियों से ही भरना चाहिए।

टि० :—यहां क्, द्, व्, त्, प् वर्णों की असकृद् आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास है। ताटङ्कटङ्क में पदावृत्ति होने से यमकालङ्कार है। शम्भु कवि की सूक्तियों का सौन्दर्य मल्लिका के फूलों और रत्नखचित बालियों से बढ़कर है अतः यहां व्यतिरेकालङ्कार है।

उद्भिन्ना कलकण्ठकण्ठकुहरात्कर्णामृतस्यन्दिनी
युक्ता यद्यपि मार्दवैकवसतिः सा काकलीहुंकृतिः।
अन्यस्तन्वि तथापि ते पशुपतिप्लुष्टस्य* जीवार्पणे
पञ्चेषोरुचितः प्रपञ्चितरसः पाकाञ्चितः पञ्चमः† ॥७३॥

यद्यपि कोयल के मधुर कण्ठ से निकली हुई, कानों में अमृत को बहाने वाली, कोमलता का एकमात्र आगार वह सूक्ष्म मधुर आवाज़ भली ही लगती है फिर भी हे सुन्दरी! महादेव जी द्वारा दग्ध कामदेव को पुनरुज्जीवित करने में समर्थ रस का विस्तार करने वाला मुझ शम्भु का यह पञ्चम स्वर कुछ और ही है।

---

*पशुपतिस्नुष्टस्य। †वाक्यंचितः पंचमः।

टि० :—शम्भु कवि की वाणी की मिठास दूसरी मधुर ध्वनियों की तरह ही है किन्तु औरों से अभिन्न होते हुए भी उसे भिन्न बताने के कारण यहां भेदकातिशयोक्ति है। शम्भु कवि का कण्ठस्वर कोकिल स्वर की अपेक्षा अधिक मनोहर है, यह अर्थ व्यञ्जना से प्रतीत होने के कारण व्यतिरेकालङ्कारध्वनि है।

किं हारैः किमु कङ्कणैः किमु सुमैः किं कर्णपूरैरलं
केयूरैर्मणिकुण्डलैरलमलं साडम्बरैरम्बरैः।
पुंसामेकमखण्डनं पुनरिदं शंभोर्मते मण्डनं
यन्निष्पीडितपार्वणेन्दुशकलस्यन्दोपमाः सूक्तयः ॥७४॥

हारों से क्या लाभ ? कङ्गनों की क्या आवश्यकता ? फूलों से क्या प्रयोजन ? कर्णपूरों की आवश्यकता नहीं। केयूरों, मणि-जटित कुण्डलों तथा आडम्बरयुक्त वस्त्रों की ज़रूरत नहीं क्योंकि शम्भु के मत में तो मनुष्यों के लिए यही कभी न टूटने वाला वह आभूषण है जो निचोड़े हुए पूर्णिमा के चन्द्र के टुकड़े के रस के समान सुन्दर उक्तियों के रूप में दिखाई पड़ता है।

टि० :—अलमलं, साडम्बरैरम्बरैः, अखण्डनं मण्डनं में छेका-नुप्रास है। पार्वणेन्दु० इत्यादि में सामान्यधर्म का लोप होने से धर्मलुप्तोपमालङ्कार है। कैमुतिकन्याय से सूक्तियों के उपमानों की व्यर्थता बताई जाने से प्रतीपालङ्कार है। भावध्वनि।

पीयूषद्रवहारिणी सुमनसां भ्रूलास्यविस्तारिणी
त्वत्सेवाभिरवापि काप्यभिनवा वाग्देवते भारती ।
अस्त्येका तु कृताञ्जलेर्जननि मे शंभोरियं प्रार्थना
मद्वाचां क्वचिदस्तु वस्तुनिपुणः श्रोता सचेता जनः* ।।७५।।

इति श्री काश्मीरदेशोद्भवमहाकविश्रीशम्भुविरचितो
राजेन्द्रकर्णपूरः समाप्तः ।।

हे वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती ! मैंने जो तुम्हारी सेवा से अमृतरस के समान मनोहर, (प्रशंसा करते समय) सहृदयों की भवों के नर्तन का विस्तार करने वाली, अलौकिक और नयी वाणी को प्राप्त कर लिया है, हे माता ! मुझ शम्भु की आपसे

---

*समाप्तोऽयं राजेन्द्रकर्णपूरः ।। कृतिर्भट्टशम्भोः ।। संवत् १९१९ मार्गवत्यष्टम्यांश्चक्रे । मय विप्रवरनानकाभिधेन काश्मीरदेशे समासीकृतः पंडितव्यासदेवविनोदार्थमोंतत्स च्छिवमोम् ।

मंगलं लेखकानां च पाठकानां च मंगलम् ।
मंगलं सर्वजन्तूनां भूमौ भूपतिमंगलम् ।।

लेखनलिखनपरिश्रममेको जानाति लेखको नान्यः सागरलंघनखेदं हनुमानेकः परं वेद इति भद्रम् ।। (ज) ८३१

हाथ जोड़कर यही एक प्रार्थना है कि मेरी वाणी को सुनने वाला कोई काव्यतत्त्वज्ञान में चतु॰ सहृदय श्रोता कहीं न कहीं तो हो ही।

टि॰ :—पीयूषद्रवहारिणी में इव का लोप होने से वाचक-लुप्तोपमा है। हारिणी और विस्तारिणी में छेकानुप्रास है। समुचितेष्टदेवता सरस्वती की स्तुति होने से भावध्वनि है।

इस प्रकार श्री कश्मीर देश में पैदा हुए महाकवि श्रीशम्भु द्वारा विरचित राजेन्द्रकर्णपूर नामक ग्रन्थ समाप्त हुआ।

राजेन्द्रकर्णपूर के श्लोकों की अकारादिक्रम से सूची

अकङ्कणमेखलागुणमहारम्	२१
अङ्के केरलसुन्दरीकच	१६
अधिकंसमाप्तसमरः	३४
अपारपुलिनस्थली भुवि	५२
अव्यात्स वस्ताण्डवविभ्रमेण	२
अस्तं याति ययातिधाम	३१
आनन्दं मुचुकन्दकन्दलि	१०
आलेख्यं चिरमुल्लिलेख	१८
उद्भिन्ना कलकण्ठकण्ठकुहरात्	७३
उर्वीं मौर्वीकिणभृति	४७
उल्लेखं निजमीक्षते	२६
एष त्वामहमर्थये	४६
औदार्यं सधने नयो	५४
कण्ठान्तः क्वणितं	५६
कन्दर्पे नलकूबरे	२३
कर्पूरैरिव पारदैरिव	३३

कस्मादम्ब विलम्बसे २७
कान्तारेषु च काननेषु च ६७
कान्तिं कल्पय तान्तिमल्पय २९
किंचित्कुड्मलितैक ६५
किं तान्तिं किमनिर्वृतिः ३६
किं बालेन मृणालतन्तु ४०
किं मौनं ननु मेनके ४८
किं राकेन्दुकरच्छटाभिरुदितं ४९
किं वान्यद्द्रसुधापुरन्दर ८
किं हारैः किमु कङ्कणैः ७४
कीरीहारलतासु १४
कुन्दः कन्दलितव्यथं ७०
कूर्मे धैर्यं शिथिलय ६६
कैलासाचलसानुसीमनि ५

चक्रे यत्र मदोर्जितार्जुन ६१
चैत्रं मा स्मर विस्मर ११
चौडी चूडाभरणहरणः ६

जहाति नगरीं १२
जाता तामरसोदरे भगवतो ५५

तद्युक्तं ननु कुम्भसम्भव ७१
तन्मूर्तं भुवने मुहूर्तममृतं ४२
तस्थौ कम्पतरङ्गितस्तनतटं १७
तात्पर्यं कमलासने ५३
तां संक्रन्दनमन्दिरे १३

त्वय्युत्पन्ने गुणवति २८
देवाकर्णय नाकिनां पुरि ६
धिक्तं मल्लीकुसुमकलितं ७२
न क्वाप्यौर्वज्वलनमहसा ७५
नाके मुग्धमधुव्रतप्रणयिनी ३८
निद्रा न द्रविणाधिपस्य ३०
नो चैत्रः सहकारकुड्मल ४१
नोद्दामानि दिशा मुखानि ५०
पीयूषद्रवहारिणी सुमनसां ७५
प्रालेयैः स्नपयन्ति ६३
प्रेमाणं विनिमील्य ३
बद्धस्पर्धः क्षितिधरसुता १
यातं रामविरामविक्लवतया ६४
यो वैरिष्वनलो नलो ५१
राकाकान्तकलाङ्कुरं कुरु २२
राकाकान्तकलाङ्कुराङ्कित ३५
राकेन्दोरुदयः किमेष ६८
राकेन्दोरुदयभ्रमेण ६२
रूपं यन्मदने द्युतिः ५९
लोलन्मौक्तिकवल्लि ३२
विलोकनकथापि मे न ६९
विषमेषु विगलितरसाश् १५

व्याप्तव्योमलते	४
शक्ति मानसतीव्रतापदहने	५८
शान्तध्वान्तकलङ्क	२७
शान्त्यै दर्पवतां जयाय	७
शेष क्लेशमशेषमुत्सृज	१९
श्लाघा राघव लाघवं तव	४४
श्रीखण्डद्रवनिर्भरन्ति	३९
संजाते जलदात्ययेऽपि	४३
संदिष्टं वसुधासुधाकर	५७
स ख्यातो जगति त्रिविक्रम	६०
सोल्लासा अपि सोद्यमा	२४
हेरम्ब त्यज कर्णतालनिनदं	२०
ज्ञाता भूरियमम्बुराशि	४५

Other works

1. The Nilamata Purana : A Cultural & Literary Study Vol. (1) Rs. 15.00

Sole distributors :

Motilal Banarasidass
Bungalow Road, Jawahar Nagar, Delhi—7

2. The Nilamata Purana : Text with English Transtation Vol II Rs. 33 00

Sole distributors :

Motilal Banarasidass, Delhi—7

The author's work is thorough scholarly and reliable and displays a wide knowledge in the various fields of Indian culture, religion and archaelogy. It is essential to all students of the history and antiquities of Kashmir"

T. Burrow, Indian Institute, Oxford.

"......is a scholarly work of outstanding merit. A rare contribution to the history of old Kashmir."

Dr. Suryakanta, (Ex), Professor, Kurukshatra University, Kurukshetra

Dr. Ved Kumari has performed a valuable task by undertaking this work upon the Nilamata Purana, an ancient Sanskrit text dealing with Kashmir.

Dr. Karan Singh
Union Minister, New Delhi

३. कश्मीर दर्पण मूल्य ४ रुपये

प्रकाशक : डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट, रघुनाथ मन्दिर जम्मू

कश्मीरदर्पण नां दा ए लेख संग्रह, डोगरी साहित्य दे बोध विकास च इक टकोदा योगदान ऐ। इस संग्रह दा मुल्ल भाशा दे तौर पर बी ऐ ते साहित्यिक बवेचन दे तौर पर बी।

रामनाथ शास्त्री, जम्मू

सांस्कृतिक और साहित्यिक निबन्ध भाग १ मूल्य ७ रु० ५० पै०
सजिल्द १० रु०

प्रकाशक : भारतीय विद्या प्रकाशन,
पोस्ट बा० १०८, कचौड़ी गली, वाराणसी

यह ग्रन्थ अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। यह भारतीय संस्कृति, आलोचना तथा भाषाविषयक उपयोगी निबन्धों का संग्रह है जो छात्रों और अध्यापकों के साथ ही सामान्य जिज्ञासु जनों के लिए भी नितान्त उपयोगी तथा लाभप्रद है। इन निबन्धों में अनेक निबन्ध एकदम नवीन विषयों का प्रतिपादन हमारे सामने करते हैं। निबन्धों का स्तर पर्याप्तरूपेण ऊंचा है। सुभग शैली इन्हें रोचक और रमणीय बना रही है।

आचार्य, बलदेव उपाध्याय, वाराणसी

प्रैस में—

१ सांस्कृतिक और साहित्यिक निबन्ध भाग २

२ डुग्गर दर्पण